UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186605

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H181.4/D61A Accession No. H1835

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

अन्तरात्मा से

अन्तरात्मा से

सर्वोदय साहित्य मन्दिर

रङ्गनाथ दिवाकर

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

मुद्रक :
गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस,
दिल्ली

मूल्य दो रुपये चार आने

प्रकाशक :
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई

सत्कार

श्री भाई दिवाकर की इस छोटी-सी किन्तु सुन्दर पुस्तक में भाव-राशि की सुषमा बिखर रही है। भक्त और आर्त हृदय के इन उद्गारों में दिवाकर जी कहते हैं—" 'मैंने किया', 'मैं करूँगा', इस तरह की बेकार बात मैं नहीं करूँगा प्रभु !" किन्तु अर्वाचीन संसार 'अहंकार विमूढ़ात्मा' बनकर पुकारता है—"मैं ही करने वाला हूँ।" इस प्रकार पुस्तक की हर एक पंक्ति में प्रार्थना की ध्वनि है; श्रद्धा, दीनता और आत्मार्पण की छवि है।

आज का जगत् ईश्वर की उपेक्षा करने वाला, अपने को सर्वज्ञ और सर्व-सत्ताशील मान बैठा है। उसका यह विश्वास है कि जो हम नहीं समझते वह समझने योग्य नहीं है; जो हम नहीं जानते वह जानने योग्य भी नहीं है। वह कहता है, "मैं खाऊँगा, मैं पिऊँगा, मैं बड़ा होऊँगा, मैं जगत् को बना दूँगा, मैं नव सृष्टि के नव पल्लव रचूँगा।" यही घोषणा सब ओर है। युग-पुरुष भगवान् श्री कृष्ण जिसको अधम गति कहते हैं, वही आज हमारी है।

आज सारा जगत् त्रस्त है। विश्व-युद्ध से हम डरते हैं। जीवन के सभी रूपों में भय हमारे भीतर भर गया है। खाना-कपड़ा मिलेगा या नहीं, वर्षा होगी या नहीं आमदनी घटेगी, बढ़ेगी या भाव बढ़ेगा, यह डर हमारे हृदय में सदा ही बना रहता है और इस भय को हम बाह्य साधनों से मिटाना चाहते हैं। विश्व-शान्ति, युनाइटेड नेशन्स, राष्ट्र-संगठन, सैन्य-वृद्धि, एटम बम, वैल्फेयर स्टेट—सबकी हमको चिन्ता है। सबके लिए खाना, पहिरना, वृद्धावस्था और अस्वास्थ्य का बीमा, चावल और घी, यह सब सरलता से प्राप्त हो सके, इस अवस्था को लाकर युक्तियों से हम अपना भय मिटाना चाहते हैं। हमको कुछ भी करना नहीं है। मात्र ऐसा कोई यंत्र बनाना है जो हमारे लिए सब-कुछ करके हमको निर्भय बना दे। निर्भयता का पाया स्थिर और दृढ़ बनाना छोड़कर कोई हमारे लिए भीत और छप्पर तक बनाकर दे दे, इसी आकांक्षा में हम बैठे हैं।

भय का भूत अनिश्चितता है। बाह्य व्यवस्था का मुख्य स्वरूप चंचलता है। जितना हम इसको बढ़ायेंगे उतनी अव्यवस्था बढ़ेगी और भय भी उसी अनुपात से बढ़ता रहेगा। आत्यन्तिक भौतिकवाद ने निश्चिन्तता देने वाली आध्यात्मिक प्राचीनता का बहिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया है। मैं मानता हूँ जब तक समृद्ध

निश्चितता के आधार पर हमारे स्वभाव की रचना न होगी तब तक यह सब प्रयत्न व्यर्थ हैं ।

मनुष्य के स्वभाव में प्रखर निश्चितता ईश्वर पर श्रद्धा है, जो अभय और सत्व-शुद्धि का मूल है । जिसको ईश्वर पर विश्वास है उसको न एटम बम का डर है, न दुष्काल का । ईश्वर के साथ सम्बन्ध बनाये बिना मनुष्य निर्भय नहीं हो सकता । ईश्वर-प्रणिधान और शरणागति ही सदा से जीवन का संबल रहा है ।

इस सम्बन्ध को बनाने वाला बल तो दीनता है । "तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी" इस तुलसी-वचन में अमर निर्भयता के परम सामर्थ्य का संकेत है । श्री भाई दिवाकर के उद्‌गारों में यही संकेत है, इसी निर्भरता का पूर्ण-भाव है ।

इस पुस्तक का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ ।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

दो शब्द

यह एक छोटी-सी किताब है। शायद इसको किताब कहना भी यथार्थ नहीं होगा, क्योंकि इसमें किसी एक विषय का प्रतिपादन नहीं है।

यह विश्व-रंगमञ्च विविध और देखने में परस्पर-विरोधी शक्तियों से भरा हुआ है। इस दंगल में हर एक जीव को अपनी जीवन-यात्रा प्रारम्भ करनी होती है। यह यात्रा एक निरन्तर झगड़ा-सा प्रतीत होती है। इसीलिए इसको जीवन-कलह कहते हैं।

झगड़ों से भरे हुए इस रणरंग में ही जीव को सुख और शान्ति की खोज करनी होती है। यह जहर को अमृत बनाने का सवाल है; विविध और विभिन्न स्वरों में से स्वर्गीय संगीत के निर्माण करने की बात है। इसी में मनुष्य का कर्तृत्व है और जीवन की सार्थकता भी। हर एक जाग्रत और विचार-सम्पन्न मानव इसी काम में अविरत लगा रहता है।

यह प्रयत्न करते-करते मन अन्तर्मुख होता है और अन्तर्मन्थन की क्रिया शुरू होती है। इस सुअवसर पर मनुष्य को विश्व के मूल सूत्र-चालक की या सत्य की झाँकी मिल सकती है। यही प्रसंग है कि जब मानव-हृदय खुद बोल उठता है। ऐसे बोल शायद दूसरों को गूढ़ मालूम होते हैं; लेकिन व्यक्ति के लिए वे शब्द और वह वाणी अत्यन्त अर्थपूर्ण और अतीव पवित्र होती है, क्योंकि वह अनुभव की भाषा होती है और उसमें उस व्यक्ति का प्राण ओत-प्रोत रहता है।

यह है अन्तरात्मा के साथ बातचीत या आत्मगुञ्जन। खिला हुआ कमल जिस भाव से सूर्य की ओर देखता है उसी भाव से मुमुक्षु जीव अन्तरात्मा की ओर देखता है और एक खास भाषा में बोलता है। उसी भाव से पढ़ें, तभी इन बातों का रहस्य समझ में आ सकेगा और इनमें जो रस है वह चखने को मिलेगा।

मैं यहाँ इतना ही कह सकता हूँ। दूसरी सब बातें मर्मज्ञ वाचकों पर छोड़े देता हूँ।

नई दिल्ली
३०-६-५१

रंगनाथ दिवाकर

१

युग-युगान्त से तुम्हें खोज रहा हूँ ओ मेरी प्रेम पूजा की पुतली ! रहा नहीं जाता अब मुझसे ! जब से तुम मुझे छोड़कर चले गये हो तब से स्वामी, देखे-बिना देखे, जाने-अनजाने, समझे-बिना समझे मैंने न किसी को चाहा है, न देखा है, न खोजा है। एक तरह से मेरा मन यहाँ-वहाँ, इधर-उधर, इसके पीछे-उसके पीछे लग गया-सा लगता है। यह उसकी झूठी आशा है कि तुम वहाँ हो। पर प्रभो, यह सब है तुम्हारे ही लिए, तुम्हारे दर्शन के लिए, तुमसे मिलने के लिए और तुमसे आनन्द-क्रीड़ा करने के लिए। तुम्हें पाते ही मेरी भूख मिट जायगी, मेरी आतुरता दूर होगी। सागर से मिली सरिता की तरह शान्त होगा मेरा हृदय। अब तक की अपनी खोज को क्या कहूँ, वह अन्धे के आलोक की खोज के समान बन गई है। अब तो कृपा करो प्रभु ! मेरी उत्कंठा दूर करो, दुःख हरण करने की कृपा करो कृपानिधे ! बिछुड़ी हुई पत्नी के मिल जाने पर उससे गले मिलने वाले पति की भाँति मुझे एक बार, केवल एक बार खूब प्यार करो अन्तरात्मा !

२

सुख-स्वप्न ने यह सूचना दी है कि बरसों बाद आज प्यारे प्रभु से मेरी मुलाकात होगी। प्रतीक्षा करके फूट गईं मेरी आँखें। हाँ, एक बार कृपा तो हुई। पर अब हृदय-स्वामी का स्वागत करूँ कैसे? मन-आँगन बुहारकर, शान्ति-सरिता का सुजल सींचकर, सुविचार का चौक पूरकर द्वार पर खड़ा हूँ मैं? पधारो, पधारो प्रभु, इस निर्मल भावना की पीठ पर बैठ मेरे अन्तरंग पर राज करो! तुम्हारा तुच्छ सेवक बनना ही मेरे लिए बड़ी प्रभुता है अन्तरात्मा!

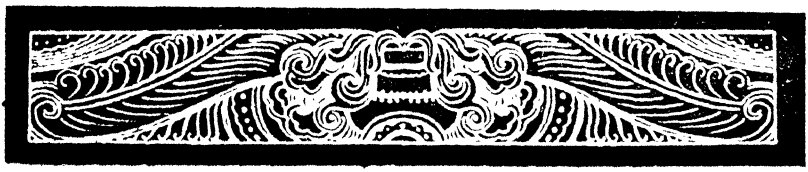

३

प्रभु, क्या आज मेरे अन्तरंग के अन्धकार का अन्त और सुप्रभात का उदय होगा ? क्या सचमुच ऐसा सौभाग्य मुझे मिलेगा इस ज़िन्दगी में ? भगवन्, जवाब क्यों नहीं देते ? तुम्हारे लादे हुए इन तन-मन-धनों का बोझ उठाते हुए सबको अपना-अपना कह-कर थक गया। तुम्हारी सम्पत्ति तुम्हें सौंप दूँ और जल्दी मुझे पार जाने दो प्रभु ! बस बस, अब मेरी और परीक्षा न लो। जिसने तुम पर विश्वास रखा है उसकी अन्तिम घड़ी तक न ठहरे रहना दयासागर ! देखो, अपना और तुम्हारा सब-कुछ अंजलि में भरे खड़ा हूँ। इसे स्वीकार करो और मुझे भी। आज मेरा यह सर्वार्पण है, पूर्णार्पण है। अन्तरात्मन्, अब जो कुछ मैं करूँगा यन्त्र बनकर, जो कुछ भोगूँगा वह तुम्हारा प्रसाद समझकर और सुख तुम्हारी करुणा समझकर। तन-मन-धन की ममता को मन से दूर करके, आत्म-गुण का आलिंगन करके तुम्हारे काम-काज की लीला में लीन हो नाचूँगा नाथ ! तुम्हारी कृपा बनी रहे अन्तरात्मा !

४

वृन्त-वल्लरी से भी बुद्धि-हीन बन गया मैं तो ! उनसे भी गया-बीता होकर बिगड़ गया प्रभु ! बेल अंकुरित और पल्लवित होकर बढ़ती है और चढ़ती है पेड़ पर, गन्धवती मिट्टी का गुण पाकर दिशि-दिशि फैलाती है खुशबू ! पर, क्या बेल उस फूल से अपना पुष्पालंकार करेगी ? क्या आश्रयदाता वृन्त खरीदेगा वह खुशबू ? नहीं, नहीं, खुशबूदार मुँह से न्योता दे अलियों को बुलाकर भू-सुधा का पान कराने वाली वह बेल कहाँ ? भूख और प्यास से इधर-उधर भटकने वाले शोकाकुल सगे मानवों की परवाह किये बिना, मनाये बिना खूब खानेवाला मैं पेटू कहाँ ? क्या यह स्वार्थाचार अन्तरात्मा को भायगा ? बन की एक वल्लरी बनाकर मेरी रक्षा करो प्रभु !

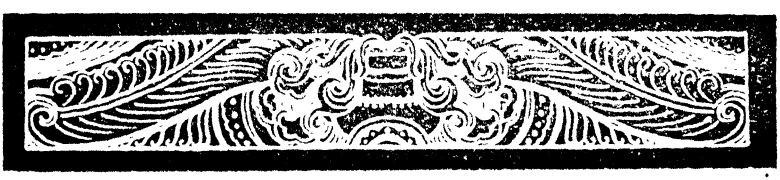

५

पंडितों का कहना है कि मन की मलिनता दूर किये बिना आत्म-ज्योति नहीं जगमगाती। कृपा करके मन को निर्मल बनाओ अन्तरात्मा! मन का मैल धोने की दिन-रात कोशिश करके थक गया हूँ। अनन्त आकाश की नीलिमा का नाश किया जा सकता है, अन्धकार की कालिमा मिटाई जा सकती है, मगर मन की मलिनता मिटाना मुश्किल है प्रभु! मैं और क्या करूँ? देखो प्रभु, मन का मैल ज्यों-ज्यों धोता जाऊँ त्यों-त्यों मैल ही निकलता है, वह चमकता ही नहीं। प्रभु, क्या तुम्हारा निसर्ग इतना नितान्त निर्बल हो गया कि मुझ-जैसे अभागे का मन निर्मल नहीं बन सकता? आदित्य के अरुण वर्ण की सरस सरिता में निहलाकर प्रभाकर की प्रथम पोशाक पहना दो मेरे मन को। बिजली की प्रभा से जगमगा दो इस मन को। नदी, निर्झर के निर्मल नीर से धोकर सफेद संगमरमर-सा साफ बना दो मेरे मन को। सत्संग से शुद्ध करके मुझे अपने पास बुला लो अन्तरात्मा!

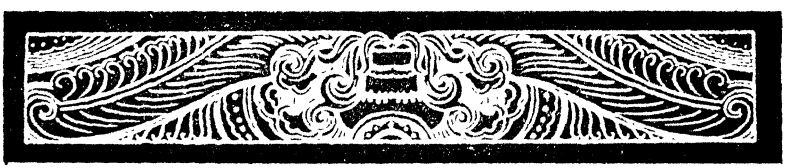

६

भगवन्, तुम्हें कैसे जानूँ ? किससे जानूँ ? जब तक तुम्हारी कृपा न हो तब तक यह असाध्य है। तुम्हारा दिया हुआ यह शरीर जड़ है, प्राण स्वार्थपूर्ण है और चित्त है चंचल। बुद्धि को तो द्वैत के बिना कुछ भी नहीं सूझता। अब बचा है एक भाव। मेरे भाव को 'अहम्' भूत ने जकड़ रखा है। कहावत है : जैसा भाव वैसा देव ! यह सच है कि भाव से ही देव का दर्शन साध्य है। भाव के बिना न तुम हो, न मैं हूँ, न है कोई। भाव-हीन राज्य में सिर्फ़ एक अखंड, प्रचंड, नियमयुक्त निसर्ग संचालित अनन्त क्रियामाला के सिवा और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। इस 'अहम्' भूत के पंजे से मेरे भाव को छुड़ाओ स्वामी ! विषय-वासना से विमुक्त कर अपना लो मेरा मन। सिर्फ़ बाहर देखना न सिखाकर अन्दर देखना, अन्तर्दृष्टि से बाहर देखना सिखाओ अन्तरात्मा !

७

स्वामी, इतना क्रोध क्यों मुझ पर ? शिशु का सृजन करके क्या उसे इस तरह सताना चाहिए ? मैं एक बेचारा अणुजीव हूँ, अभिप्राणी हूँ ! मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है ? छोटी चिड़िया पर यह ब्रह्मास्त्र क्यों ? यह कैसी अनर्थ परम्परा है ? मत्त महोदधि की उत्तुंग तरंगों की तरह दुःखों के ढेर गिर पड़ें तो क्या यह जीव सह सकेगा ? यह देखते ही दहल उठता है मेरा दिल। अब भी कृपा कर बचाओ जन्मदाता ! अरे बाप रे, यह क्या है ? आज तो बड़ी बीमारी में फँस गया, कल जमीन-जायदाद जब्त हुई, फिर कैदखाने में रहना पड़ा और उसके बाद क्या ? प्रिय पत्नि-पुत्रों की मृत्यु ! इस प्रकार सब अपना जो-कुछ था, चला गया और फिर सिर्फ भिक्षा-पात्र का राज मिला मुझे। हाय, यह सब कैसे सहूँ अन्तरात्मा ? आखिर, अपना प्यार तो दो कम-से-कम ? क्या यह समाधान भी न चाहिए मुझे ?

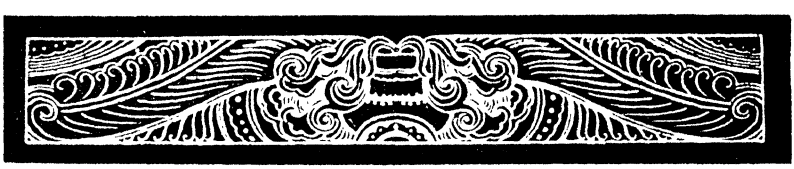

८

अगर कभी कहूँ कि मुझे दुःख नहीं चाहिए तो फटकार दो प्रभु ! दुःख ही पावन है, दुःख ही पावक है और है दुःख ही अहंकार-नाशक ! दुःख ही मेरी माया की अक्सीर दवा । वही तुम्हारी राह दिखाने वाला दीपक ! दुःख की आग में तपाओ मुझे शुद्ध करने को सोने की तरह, फेंक दो मुझे संकटों के सागर में । मगर प्रभु, तुम्हारी सेवा में मेरी एक छोटी-सी प्रार्थना है । तुम अपना करुणा-कवच पहना दो मेरे जी को प्रभु ! ओह उससे प्राप्त होगा मुझे हजार हाथियों का बल । फिर क्या, फिर क्या ? दुःख-विष पीकर अमृत बन सकूँगा मैं । चिन्ता की आग निगल कर शान्त हो सकूँगा मैं । वह अपना करुणापूर्ण धीरज दो अन्तरात्मा ! तुम्हारा यह लादा हुआ बोझ तुम्हारे सिवा और कौन उतार सकता है स्वामी ?

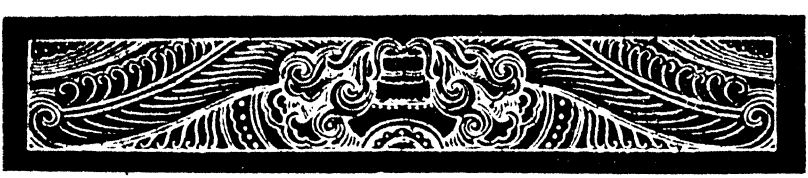

६

ओह, वह क्या था जिसने मुझे उस दिन तपाया था ? वह कैसा अन्तर्मन्थन था ? वह आग, सन्ताप की आग, अन्तःसन्तापों की आग ! आहा, उससे जो अन्तःशुद्धि हुई उसको मैं क्या कहूँ ! वही दिव्याग्नि तो नहीं है ? उसका 'पावक' नाम सार्थक हुआ। जिसने पापों का नाश कर, काम-पुरुष को जलाकर, अहंमन्यता दूर कर, मुझे तुम्हारी कान्ति देकर पवित्र बनाया उस अग्नि गुरु को क्या मैं कभी भूल सकूँगा अन्तरात्मा ? क्या उस अग्निपरीक्षा के परमोत्सव का वर्णन किया जा सकता है ? उस ज्वाला-जिह्वा ने मेरा बहिरंग चाटकर साफ़ किया। उसकी आँच से मेरा मन निर्मल हुआ। उसकी कान्ति से मेरा अन्तरंग आलोकित हुआ। उस पवित्रता से ही तो मुझे प्रसन्नता मिली न ? उस पावक ने ही मुझे साफ़ सोना बनाया न ? उस संस्कार ने ही मुझे तुम्हारे सेवक-वृन्द में प्रवेश कराया ? ओ प्रभु, प्रभु, उसी प्रकार मुझे नित पावन बनाओ पावक पुरुष ! इस तरह जलकर ठंडा होने की, मरकर भी जीने की बाट दिखाओ अन्तरात्मा !

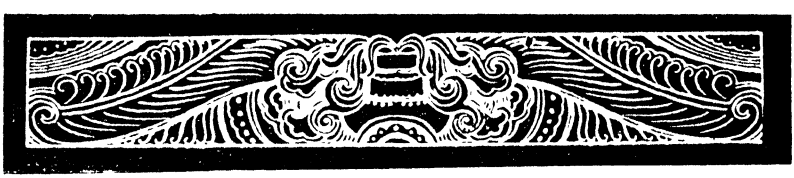

१०

प्रिय निधि, जीवन सर्वस्व धन-दौलत खोकर कंगाल बने कंजूस की तरह बन गया मैं। मेरा भरा हृदय अब खाली हो गया है। इस तरह खाली होकर 'साँय-साँय' करने वाले अपने इस हृदय-मन्दिर को भरूँ कैसे? किससे भरूँ? लेकिन, मैं भी कितना बेवकूफ़ हूँ? इन तुच्छ चीज़ों को न जाने क्या समझा था? सोना समझकर कूड़ा-करकट भण्डार में भरकर, उसे छाती से लगा दिन-रात उसी की चिन्ता में रहकर मैं कैसा पागल बन गया था! स्वामी, स्वामी, मेरा वह पागलपन दूर हुआ; बुद्धि का उदय हुआ और प्रकाश दिखाई पड़ा। आओ प्रभु, आओ! तुम्हीं हो मेरे पिता! तुम्हीं खाली जगह भरकर प्रसन्नता दो। तुम्हारे बिना कुछ भी नहीं है, तुम हो तो सब-कुछ है। इस सूने सिंहासन पर तुम्हीं आरूढ़ होकर उसकी शोभा और मेरे अन्तर की सम्पत्ति बढ़ाओ अन्तरात्मा!

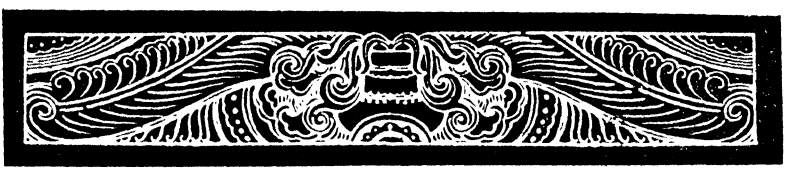

११

कहाँ है, किसमें है मेरे जीवन की पूर्ति प्रभु ? राह दिखाये बिना, इस चक्र में खूब चक्कर कटा रहे हो ! मेरी यह दीन दशा देख तुम्हें तरस नहीं आता ? अब बस करो स्वामी, ऊब गया हूँ, थक गया हूँ । भविष्य बिना जाने, एक क़दम भी बेकार बढ़ा न सकूँगा आगे । बताओ, फौरन बताओ, आगे की राह दिखाओ, प्रकाश का प्रदर्शन कराओ । अन्धे का हाथ पकड़कर रास्ते पर लगाओ देव ! मेरे अन्दर का आर्त आलाप सुनो । कहाँ है, किसमें है मेरे जीवन की पूर्ति अन्तरात्मा ? एक बार फूँक कर काला परदा हटाकर चिन्मय प्रकाश फैलाओ मेरे हृदय के स्वामी, मुझे उबारो । भूले-भटके को घर की राह बताकर नवजीवन प्रदान करो । प्रभु, प्रभु, कितना पुकारूँ तुम्हें ? कैसे सम्बोधन करूँ ? किस तरह प्रार्थना करूँ ? तुम्हें छोड़ किसके मिलूँ ? तुम्हारे सिवा और कौन है मेरे लिए सहारा अन्तर्यामी !

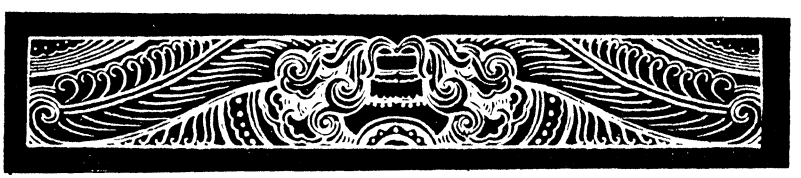

१२

किसे अर्पण करूँ, किस पर चढ़ाऊँ यह जीवन-पुष्प ? कराओ, कराओ अन्तरात्मा, मेरे इष्ट देवता का दर्शन। खिलाकर, मिलाकर, पहनाकर, पाल-पोसकर बड़ा बनाया माता-पिता ने। विविध संस्कारों से सुसंस्कृत हुआ यह मन। विवेक-विकास से तेज बनी यह बुद्धि। स्थिर तथा मधुर हुआ यह भाव। स्वामी, स्वामी, इस विकसित लता के पूर्ण खिले फूलों की भक्ति भेंट चढ़ाने का स्थान दिखाकर धन्य बनाओ मुझे हे सृष्टिकर्ता ! भरे थन की गाय की तरह, भूखे बच्चे की तरह, वियोगिनी विरहिणी की तरह, स्फूर्तियुक्त कवि की तरह उत्कंठित हो रहा है मेरा हृदय। हमेशा की तरह पुष्पों से अंजली भरकर खड़ा हूँ भगवन् ! इष्टदेव के दर्शन तो नहीं हुए, हाथ थक गए, मन उदास हो गया। अब इन फूलों को लेकर क्या करूँ ? क्या इन्हें यों ही नीचे डाल दूँ या निराशा से दूर मैदान में फेंक दूँ ? क्या करूँ प्रभु, एक बार बताओ तो सही। इन्द्रिय-सुख में लगा दूँ इन अपनी शक्तियों को ? आत्म-सुख भोगी मेरे लिए यह उचित नहीं। बीवी-बच्चों व भाई-बहनों की सुख-साधना में लगा दूँ यह सम्पत्ति ? नहीं, यह मुझे ठीक नहीं जँचता। वह संकुचित दृष्टि ठहरी। घर-बार, पुत्र-कलत्र, धन-दारा तजकर भस्मधारी संन्यासी की तरह अपने अकेले के अतःसुख की आकांक्षा करूँ ? छिः, छिः, यह भी ठीक नहीं लगता मुझे। क्यों ? यह भी एक महास्वार्थ है। तो फिर देव, क्या मेरे लिए कोई उचित ध्येय नहीं है ? क्या मेरे लिए कोई योग्य इष्ट देवता भी नहीं ? मेरा यह जीवन-मधु निचोड़कर मजे से चूसने वाला क्या कोई आखेटक पैदा नहीं हुआ

है ? हाय, हाय, प्रभु, दया करो, दिखाओ, दिखाओ, तुम्हीं दिखाओ राह तुरन्त ! यह प्रस्फुटित फूल मुरझाकर कुम्हलाने के पहले, यह यौवन उतरकर बुढ़ापा आने के पहले, हे जग के सिरजनहार प्रभो, राह दिखाओ। हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ स्वामी ! समर्पण का ठौर दिखाओ अन्तरात्मा !

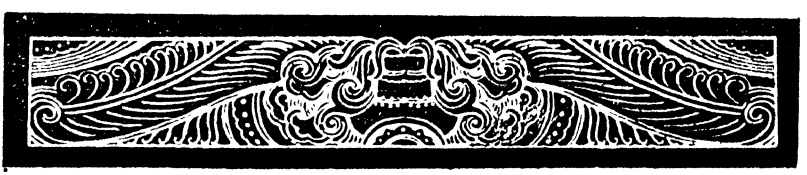

१३

मेरी मूर्खता का अब कोई ठिकाना ही नहीं रहा। तुम्हारा सब-कुछ अपना मान, बेकार ढोकर, लड़-झगड़कर हैरान होने वाले इस बेवकूफ़ को देखकर हँस रहे हो स्वामी! मेरा जो नहीं है उसे किसे सौंप दूँ? किस देवता को अर्पण करूँ? तुमसे यह पूछा कि मेरा ध्येय क्या है; अपने को हँसी का पात्र बना लिया मैंने। लज्जा से गड़ा जा रहा हूँ प्रभु! तुम्हारी करुणा के बिना यह लज्जा कैसे छिपा सकूँगा? तुम्हारी सारी सम्पत्ति तुम्हीं को सौंपकर सुखी न हो सकूँगा मैं? तुम्हारा दिया हुआ यह तन, यह मन और यह बुद्धि तुम्हारी जनता की सेवा में लगाकर क्या सुखी न हो जाना चाहिए मुझे? जनता-जनार्दन, प्रजा-परमेश्वर, नर-नारायण ही मेरे प्रभु हैं न? इन प्रभु की सेवा ही मेरा जीवन सर्वस्व है न सर्वान्तर्यामी? तुम्हारा दिया हुआ यह सब-कुछ श्रद्धा-निधि है, विश्वास की गठरी है। उसे तुम्हारे ही काम में लगाकर, खर्च कर निर्मल रह सकूँ तो मैं मुक्त, पर, तुम्हारा सब-कुछ अपना समझ गुण्डे की तरह लड़ूँ तो मैं बद्ध! मुक्त जीवन का मार्ग दिखाकर आगे बढ़ाओ अन्तरात्मा!

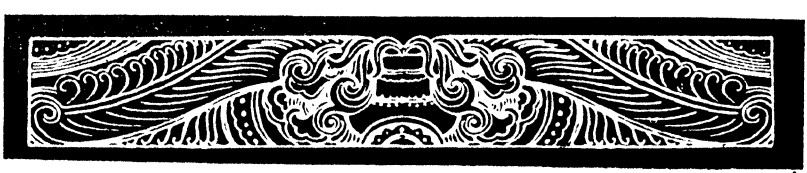

१४

मनीषियों का, त्यागियों का कहना है कि जर, जोरू, जमीन हेय हैं। तुम्हारी सृष्टि में क्या कोई वस्तु हेय है प्रभु? कूड़ा-करकट भी खेतों को उर्वर बनाने में उपयोगी होता है न? सोना तो सकलार्थ साधक है न? स्त्री समस्त मानव-कुल की जननी है न? भू सारी जीव कोटि का आधार है न प्रभु? ऐसा कौन है जो इन सबको तजकर जी सके? हमारी देखने की दृष्टि में, हमारे समझने के भाव में, हमारी चाल-चलन की रीति में हेय तथा श्रेय है, न कि उन वस्तुओं में। मैं और मेरा हेय है, तुम और तुम्हारा श्रेय है न प्रभु? 'अहम्, मम' हेय और 'तव दासोऽहम्' श्रेय है न प्रभु? 'अहम्' दृष्टि से देखा, सुना, सूँघा, छुआ हुआ विष है तो 'तव' की दृष्टि से देखा, सुना, सूँघा, छुआ हुआ और पहना हुआ अमृत है। आसक्ति से किया हुआ हेय है, बन्धनकारी है, कड़वा है, अनासक्ति से किया हुआ श्रेय है, रोचक है, मीठा है...विकसित ताजे फूल के परिमल की तरह; युवती अंगना के अधरामृत की तरह, ताजे मधु रस की दिव्य रुचि की तरह हेय भाव छोड़, श्रेय भाव से काम करने की बुद्धि दो अन्तरात्मा! यही मेरे अन्तरंग की चिरन्तन, अनन्त प्रार्थना है!

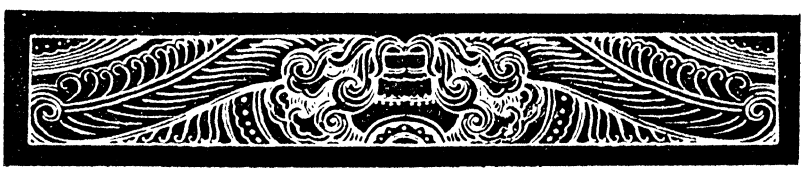

१५

संसार को हेय समझकर भागते हैं संन्यासी। पर, न जाने वे क्यों ऐसा समझते हैं। स्वलीला के लिए आत्मा से उपजात रंगमंच है यह संसार, लीला के लिए इन्द्रियों के साथ ठना हुआ आत्मा का युद्ध है यह संसार। इसे छोड़कर कानों पर हथेली रख, 'शान्तं पापम्' कहते हुए भाग जायं तो हमारे हाथ लगेगी कायरता, न कि खेल और क्रीड़ा। एक ओर हटकर परदे की आड़ में आ जाय तो पात्र बदल जायगा, पर न खेल खत्म होगा और न संसार छूटेगा। इसलिए आत्मा का आह्वान स्वीकार करके, उसके रचित इस नाटक में भाग लेकर, इन्द्रियों को जीतकर परम पद प्राप्त करने की प्रबल शक्ति प्रदान करो मेरे इस हीन अधीर मन को अन्तरात्मा!

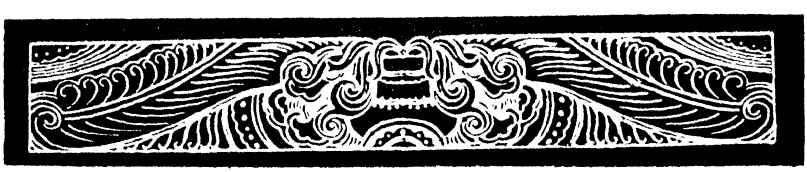

१६

डरते हैं, घबराते हैं इस संसार से; हेय कहकर तिरस्कार करते हैं जनम-मरणों का! यह क्यों स्वामी, इनकी ऐसी धारणा क्यों? वे जायँगे कहाँ यह संसार छोड़कर? जनम-मरण को छोड़कर कहाँ रहना चाहते हैं ये? कहते हैं कि इन्हें छोड़कर तुम्हारी खोज करेंगे। क्या उनका इस संसार से भाग जाना डरपोकों का भागना नहीं है? क्या तुम यहाँ नहीं हो? क्या तुम इनमें नहीं हो? जो तुम्हें यहाँ नहीं देख सके वे क्या 'मुक्ति' के ठौर पर देख सकेंगे? जिस मुक्ति की वे खोज करते हैं वह तो आत्मा की अविरत समाधि है न? तुम्हारी सर्वव्यापकता पर विश्वास रख, उसे देख, समता से संसार में रहना ही सच्ची मुक्ति है न प्रभु? उसे छोड़ तुम्हारी खोज करने वाले आँखों के होते हुए भी अन्धे हैं, कानों के होते हुए भी बहरे हैं, माता की गोद में रहते हुए भी माता की खोज करने वाले हैं। यह तो नदी की मछली की, जल और आकाश की चिड़िया की, वायु की खोज करने के समान है। इस प्रकार मुझे मत भुलाओ अन्तरात्मा! जो भी देखूँ वह तुम्हारा रूप हो। जो भी सुनूं वह तुम्हारी ही वाणी हो, जो भी छुऊँ वह तुम्हारा पाद हो, जो भी खाऊँ वह तुम्हारा प्रसाद हो। इस तरह बनाकर इसी जगह को मुक्ति-पद बनाने की कृपा करो महा-स्वामी!

१७

कहते हैं कि तुममें मिल जाना और इस संसार में न आना ही मुक्ति है। तुमसे मिल जाने पर भव का भय ? फिर तुमसे मिलना ही क्यों ? क्या तुम इस भव में नहीं हो स्वामी ? अगर तुम यहाँ नहीं हो तो यहाँ के लोगों को तुमसे मिलने का स्थान कौन-सा है ? क्या यह भव अलग है और तुम अलग हो ? क्या तुम्हारे बिना यह भव रह सकता है ? क्या तुम और तुम्हारी शक्ति अलग-अलग हैं ? क्या तुम अलग हो और तुम्हारी लीला अलग है, क्या लीला के सिवा 'तुम' हो ? या तुम इस लीला से भिन्न रह सकते हो ? अब मुक्ति-मुक्ति कहते, उसका मंत्र जपकर मैं अकेला भव-मुक्त हो जाऊँ तो क्या हुआ स्वामी ? मेरे माता-पिता, मेरे भाई-बहन, मेरे साथी-संगी कहाँ जायं उन सबको छोड़ तुम्हारी ओर आऊँ ? क्या अकेले मुझको मिल सकेगी मुक्ति ? नहीं, नहीं, प्रभु, वह मुक्ति मुझे नहीं चाहिए। सबको वहाँ छोड़कर अन्यत्र तुमसे मिलने की मुक्ति मुझे नहीं चाहिए। एक बार स्वार्थ छोड़ दिया तो फिर स्वार्थ हूँढूँ स्वामी ? नहीं, नहीं, तुम यहीं हो, इसी भव में हो, यहीं पर तुम्हें देखूँगा, तुमसे मिलूँगा। सर्वव्यापी तुमसे सबके साथ मिलूँगा। मिलकर तुम्हारे संग खेलूँगा और खेलकर तुम्हारी क्रीडा को सार्थक बनाऊँगा। ऐसी इह-मुक्ति का मार्ग दिखाओ अन्तरात्मा !

१८

ओह, अब मैं समझ गया। तुम्हें छोड़ अपना समझने से, अपना लेने से इस तरह बोझ-सा प्रतीत हुआ मुझे यह संसार! रूप कितना भी सुन्दर रहे, कितना भी अनगिनत सौभाग्य रहे तो क्या हुआ? क्या अपना प्यारा पति आँखों से ओझल होते ही लावण्यवती की उमंग तथा लावण्य रहेगा? नमक बिना भोजन कैसे रुचेगा? रस-रहित वाणी कैसी लगेगी? इसी तरह है मेरी जिन्दगी तुम्हारे बिना। प्रभु, अब ऐसा अनुग्रह करो कि मैं सब-कुछ तुम्हारा ही मानूँ और हमेशा तुम्हारे साथ रह सकूँ अन्तरात्मा!

१६

ये तन-मन-प्राण सब तुम्हारे ही घर-द्वार हैं न ? तुम्हारे ही मन्दिर हैं न ? तुम्हारे ही मठ हैं न ? 'अहम्' का चोर मैं इनमें क्यों प्रवेश करूँ ?प्रवेश करके क्यों हलचल मचाऊँ ? शान्ति भंग करने वाले इस चोर के हाथ-पैर बाँधकर बाहर भगाओ न, जिससे कि वह दोबारा इस तरफ़ आने न पावे, झाँककर न देख सके। अब और न सहना उस आगन्तुक का उपद्रव अन्तरात्मा !

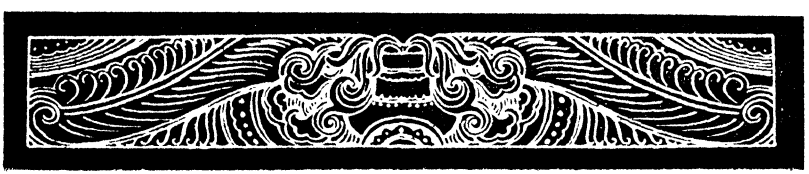

२०

प्रभु, खुद को दुःख देने वाला दैत्य मैं ही हूँ न ? अपना शत्रु मैं आप ही हूँ न देव ? 'मैं, मैं' नामक अहं-गीत ने ही मुझे बिगाड़ दिया, मुझे पथ-भ्रष्ट बनाया। सच्चा सुख भुलाकर असत्य में डुबो दिया। मेरे इस अज्ञान-अन्धकार का अन्त कब होगा ? उस सुदिन का उदय कब होगा ? अपना प्राण-घात आप करके अपनी लाश की छाती पर तुम्हारी प्राण-प्रतिष्ठा को देखने, आनन्द मनाने का मंगल मौका कब दोगे मुझे अन्तरात्मा ! इस मरणमय जीवन से उठाकर उस जीवनमय मृत्यु में बसाओ इस कातर जीव को स्वामी ! दिखाओ वह नवजीवन और पिलाओ वह अमृत अन्तरात्मा !

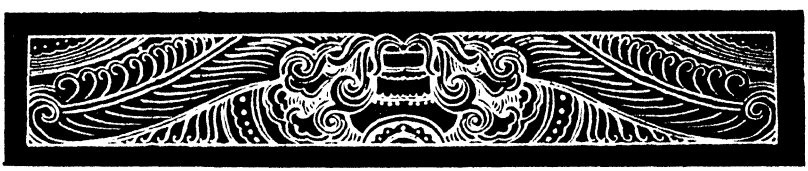

२१

अन्धमति हूँ मैं, सत्य-ज्ञान-शून्य हूँ मैं प्रभु ! हमेशा 'अहम्' की पीठ पर आरूढ़ होकर अवलोकन करने वाला अज्ञानी हूँ मैं। इस विशाल विश्व के तरन-तारन, कर्ता-भर्ता तुम्हें न देखने वाला महामूर्ख हूँ मैं। प्रभु, 'अहम्' भाव के दुर्दम दुःख से मेरा, अपना कहते हुए दिन-रात हैरान हो रहा हूँ। मेरी बाहरी आँखों पर आक्रमण किया था माया ने और उसी ने सता-सताकर मेरा अपमान किया था। बस करो अब मेरी यह नादानी, यह मूर्खता स्वामी ! अन्तश्चक्षु खोलकर प्रकाश दिखाओ और सत्योपदेश देकर अपने दर्शन देने की कृपा करो अन्तरात्मा !

२२

मुँह से निकली हुई बात वापस नहीं आती, फूटा हुआ मोती फिर नहीं बनता, बहा हुआ पानी फिर नहीं लौटता। ओ मेरे प्राण, नाहक क्यों वक्त गँवाते हो ? जान लो अपनी गहराई, अपना अर्थ, जीने का उद्देश। शरीर जरा से जर्जरित होने के पहले, भाव-मन का बल कम होने के पहले, जिन्दगी बरबाद होने के पहले अपने को जान लो, जानकारी से युक्त वीर कर्म करके सार्थक बन जाओ, कृतार्थ हो जाओ ओ मूर्ख जीव ! यह जिन्दगी अब सिर्फ एक खाली बर्तन है। मेरी अन्तरात्मा को यह पसन्द नहीं है। ओ देव, सद्भावनाओं, सत्क्रियाओं का रस लबालब भरकर स्वामी को सुपुर्द करके धन्य बनाओ शीघ्र इस जीव को। उबारो इस जीव को प्रभु !

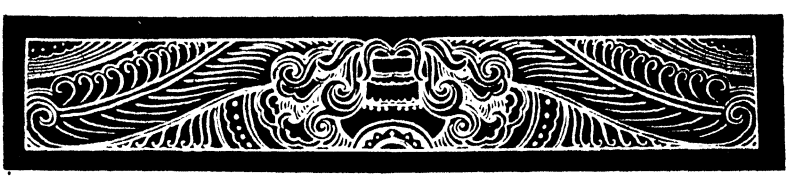

२३

मैं जानता हूँ तुम्हारा सच्चा गुण प्रभु! श्रमजीवियों के साथी तुम हो, तुम्हें आलसी कमजोर व्यक्ति पसन्द नहीं हैं। तुम्हारे दिये हुए कष्टों के साथ अपनी ताक़त से बहादुर की तरह लड़ूँगा और तब तक तुम्हारी शरण में नहीं आऊँगा जब तक कि तुम्हारी दी हुई सारी शक्ति खर्च्च न हो प्रभु! आलसी, कायर, कमजोर दिल वालों की शरण नहीं है मेरी, स्वामी! मेरी शरण श्रान्त, पराक्रमी वीर की शरण है। देखो एक बार मेरी ओर! लड़ते-लड़ते हाथ थक गए हैं, साँस रुँध गई है और रक्त-रंजित हो गया है यह शरीर। अब तुम्हारी शरण में आया हूँ। आओ जल्द, आओ शीघ्र, हाथ बढ़ाकर मुझे अपनी ओर खींचकर रक्षा करो मेरी अन्तरात्मा! पापी पुरुष के साथ ठने हुए इस मेरे जंग में उसकी हार और मेरी जीत होनी ही चाहिए।

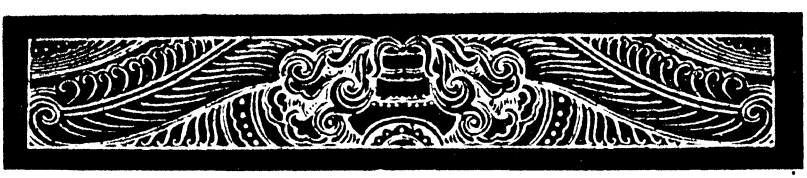

२४

सुहावना सन्ध्या-समय, जीव-जन्तुओं की विश्राम-वेला है यह स्वामी ! आज अपने हृदय-मन्दिर का द्वार खोलकर तुम्हारी बाट जोह रहा हूँ। तुम्हारा ध्यान ही मेरे लिए विश्रान्ति-दर्शन है, तुम्हारा दर्शन ही मेरे लिए स्वर्ग-सुख है, तुम्हारा मिलन-सुख ही मेरे लिए अमृत-जीवन है। आओ प्रभु, पधारो स्वामी, प्रकाश कम होने के पहले, अँधेरा छा जाने के पहले, मेरे हृदय-मन्दिर में प्रवेश करो। तुम्हारे आगमन की आशा ही मेरे जीवन का आधार है। तुम्हारा आगमन देखकर मुझमें आनन्द उमड़ आयगा। तुम आओ तो, सभी दुष्टता जीतकर खड़ा रहूँगा मैं। अगर तुम नहीं आओगे तो मेरी छाया ही मेरी शत्रु होगी। प्रतीक्षा में खड़े हुए अपने सेवक का हाथ नहीं छोड़ना स्वामी ! तुम पर भरोसा रखने वाले अपने सेवक को, अपने भक्त को और सताना न अन्तरात्मा ! शीघ्र दया करो भगवन्, कृपा करके इसकी रक्षा करो प्रभु !

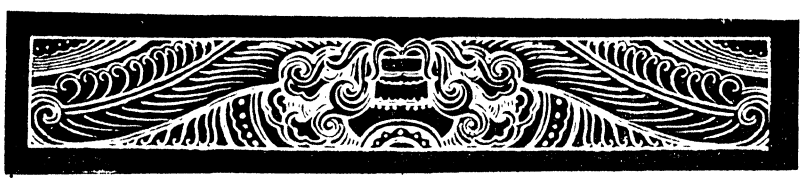

२५

यह भी कैसी सुस्ती है ? आज इतनी थकावट क्यों ? कहाँ से आई यह उदासी ? क्या मुझमें ताक़त नहीं है ? क्या मुझमें सामर्थ्य नहीं है ? क्या तुमने मुझे हाथ-पैर नहीं दिये और मेहनत करके, एड़ी-चोटी का पसीना बहाकर जिन्दगी बिताने के लिए मुझसे नहीं कहा ? मगर क्या ? मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि मेरी सारी मेहनत बेकार है। मेरी सारी कोशिश नाकामयाब प्रतीत होने लगी है। ऐसा क्यों लग रहा है प्रभु ? ऐसा क्यों ? बताओ न मुझे ? मेरे इस ज़रूरी काम में राग-रङ्ग-रुचि पैदा तो करो ! इतनी बेरहमी क्यों ? और कितने रोज़ चलाऊँ यह मशीन-सी जिन्दगी ? कर्मानन्द की राह दिखाओ मुझे अन्तरात्मा ! कर्म-भार उतारकर, कर्तव्य-भाव के उस पार पहुँचाकर, लीला की पुष्प-माला पहनाओ प्रभु ! स्वकर्म को ही लीला भाव से करने का मन प्रदान करो प्रभु !

२६

प्रभु, यह कैसी कमज़ोरी है मेरे मन की ? ज़रा-सी बीमारी से ही सोचने लगता हूँ कि जिऊँगा या मरूँगा ! कितना अधीर है मेरा मन ? इस देह में रहने वाले समतोल पंचभूतों को क्या अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है ? पंच प्राणों को अपने प्रमाण का ज्ञान नहीं है ? इसके अलावा क्या तुम अपने लोगों की भलाई देखना भी नहीं जानते हो ? मेरी चिन्ता कहाँ तक हो सकेगी ? अगर भूत राह छोड़ दें तो क्या मैं इकट्ठा करके उन्हें बाँध सकूँगा ? प्राण अगर निकलने लग जायं तो क्या मैं उन्हें रोक सकता हूँ ? मेरा अन्त करना ही यदि तुम चाहो तो क्या मैं इस तन की, इस जीव की रक्षा कर सकता हूँ ? कैसा मूर्ख हूँ मैं भी। मृत्यु के पहले ही व्यर्थ चिन्ता की ज्वाला में मैं जला जा रहा हूँ। मुझे ऐसा बनाओ प्रभु, कि मैं तुम पर भरोसा रख-कर कानन-कुसुम की तरह, गगन-विहारी पंछी की तरह जीवन बिता सकूँ !

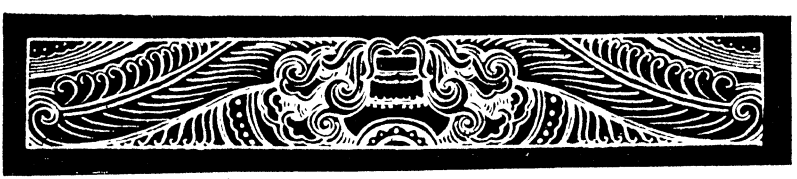

२७

यह धर्म है, वह धर्म है, 'मैं धर्मात्मा हूँ, तुम धर्मात्मा हो' ऐसा कहते घूमने वालों की कमी नहीं है संसार में ! क्या तुम जानते हो यह धर्म तुलसी-पत्र खाने, नाम-स्मरण, तिलक, रुद्राक्षमाला, भस्म, त्रिकाल स्नान तथा पदे-पदे शुद्धता की डींडी पीटने से होता है ? 'मैं भक्त हूँ, मैं नियम से मन्दिर में जाकर भगवान् के दर्शन करता हूँ' ऐसा कहने वाले इस सीमातीत भक्त-समूह की परीक्षा ली है तुमने ? क्या धर्म वेश्या की वेश-भूषा है, रंगमंच का नर्तन है, जो इस तरह धर्म-मूर्ति बनने के लिए आवश्यक है? तुम्हारे पास आने के लिए शरीर शुद्ध होना चाहिए, पर-धन, पर-स्त्री, पर-पीड़ा से दूर रहकर, दुखियों की सेवा करके लगातार स्वकर्म में निरत होना चाहिए, तुम्हारा नाम लेने के लिए वाणी, पर-निन्दा तजकर, पर-गुण-परमाणुओं का पर्वत बनाकर शुद्ध होनी चाहिए, कुकल्पना को छोड़कर सुकल्पना प्राप्त करके मन निर्मल होना चाहिए तुम्हारे ध्यान के लिए, सत् साक्षी, प्रेमपूर्ण और विश्व दयापूर्ण होकर शुद्ध होना चाहिए तुममें लीन हो जाने के लिए। यह जिस धर्म में नहीं है वह मिथ्याडम्बर है, सार-हीन तमाशा है, धर्म नहीं। इस अधर्म से अलग करके सच्चे धर्म के मार्ग पर लगाओ मुझे अन्तरात्मा !

२८

तुमने कहा जन-सेवा, जनता जनार्दन की सेवा करने के लिए। प्रभु, तुमने यह भी घोषणा की जन-सेवा ही अपनी सेवा है। तो क्या प्रभु, क्या मैं तुम्हारी करुणा के बिना उसे कर सकता हूँ? तुम्हारी मदद के बिना मैं कितना कर सकता हूँ? मैं कर भी सकूँगा क्या प्रभु? लोगों में व्याप्त अज्ञान, दारुण दरिद्रता, यह दुष्टता, महा-हीनता दूर कर सकूँगा मैं? अरे, यह मेरा प्रयत्न तो जगत् के अन्धकार को दूर करने के लिए निकली हुई जुगनू की तरह, पृथ्वी-प्रदक्षिणा के लिए चली चींटी की तरह, वेद पढ़ने के लिए उद्यत दुःसाहसी मूढ़ की तरह हुआ प्रभु! क्यों प्रभु, मुझे हँसी का पात्र बनाने के लिए ही तुमने यह काम मुझे सौंपा? मेरी योग्यता देखकर, उसके अनुसार काम करने को आज्ञा देनी चाहिए न? अब तुम्हीं ने राह दिखाकर, जो काम मुझे करने की आज्ञा दी है उसे करा लेने की कृपा करके मुझे धन्य बनाओ अन्तरात्मा!

२९

ओ जीव, मत घबराओ! चारों ओर से मृत्यु घेरकर नाचने लग जाय तो क्या हुआ? प्राण जीने की कोशिश नहीं करेगा? अँधेरा घेर ले तो क्या तारे अपनी चमक जाने देंगे? अँधेरा नहीं जायगा तो क्या हुआ, दिया टिमटिमायेगा नहीं? जितना भी अज्ञान हो, अपनी अन्तर्ज्योति के प्रकाश से लोगों को राह दिखाओ जीव, हिम्मत न हारो! चाहे जितनी भी गरीबी हो, अपनी जायदाद बाँटकर, भाई-बहनों की भलाई करो! दुष्टता चाहे जितनी भी हो, उस पर सज्जनता की सत्य-पताका गाड़ो। दीनता बेहद हो तो क्या हुआ, दिल कड़ा करके सबमें उत्साह भर दो। दिन में एक क़दम आगे बढ़ सको तो क्या यह कम है तुम्हारे लिए! वही तुम्हारा कर्तव्य है ओ जीव! उसे करके, अन्तरात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करके धन्य हो जाओ ओ जीव! उठो दिलेर की तरह आगे बढ़ो!

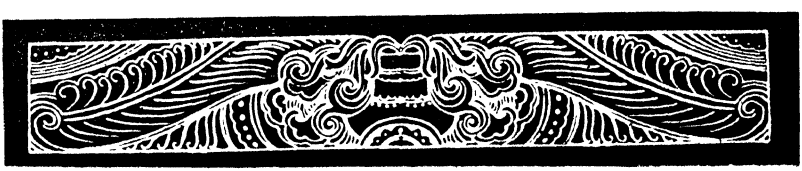

३०

हाय, हाय, अब क्या करूँ ? सूरज अस्ताचल की ओर मुड़ा। साँझ समीप आई। बिना रास्ता तय किये, नाहक समय गँवाया मैंने स्वामी ! उधर घर भी दूर रहा, इधर मन्दिर भी दूर। जंगल के बीच पहुँच गया हूँ, अँधेरा छाने का समय आ गया। मार्ग का मुर्दा बनने की नौबत आ गई न ! हाय, अब क्या होगी मेरी हालत ? ओ परमात्मा, ओ देव, कैसी है मेरी बाल-बुद्धि भी ? वन-फूल चुनते, वृक्ष-बेल देखते, विहगों का गीत सुनते, दिन बिता दिया बिना राह तय किये। वह भी तुम्हारी बताई हुई राह पर। अन्तरात्मा, तुम्हारे बिना और कौन है मेरे-जैसे आलसी आदमी का सहारा ? पहुँचा दो न उस सुन्दर मन्दिर में, उस सुन्दर आत्म-मन्दिर में जिसकी खोज सभी करते हैं। वहाँ मैं हृदयेश्वर के आगे सिर नवाऊँगा, उसके चरणों पर मस्तक रखकर अपने दोष मान लूँगा, क्षमा-याचना करूँगा। इससे अधिक कर ही क्या सकूँगा ? मुझ महापराधी के लिए और उपाय ही क्या है प्रभु ? ले चलो वहाँ, ले चलो सूरज अस्त होने के पहले, राह न दीखने के पहले। बीच जंगल में बाँह न छोड़ो अन्तरात्मा !

३१

प्रभु, मेरे मानस-सरोवर का राजहंस बनकर कब शोभा बढ़ाओगे, कहो तो। एक बार कहकर मेरे मन की उत्कंठा शान्त करो स्वामी! देखो, देखो, एक बार तो देखो, मेरे इस मन की स्फटिक-शिला पर स्थित निर्मल भाव में बिम्बित हो, मुझे अपनी परछाईं का दर्शन कराओ। कम-से-कम पल-भर के लिए तो झाँककर देखो। तनिक यहाँ देखो इस शान्त झील में नील नभ की छाया में। वही तुम्हारा पीठ है। वह देखो, उसमें कमल उत्कण्ठित होकर तुम्हारी राह देख रहे हैं। प्रभु, इस मलिन मन को निर्मल बनाने में कितनी तकलीफें झेली हैं मैंने! इतना साहस, इतनी तैयारी किस लिए, किसके लिए? तुम्हारे दर्शन तथा मिलन के लिए। अगर तुम नहीं आते तो ...नहीं नहीं, बस, बस, वह बात वहीं रहने दो...ऐसी अमंगल कल्पना भी न करूँगा। तुम्हारी आशा में ही मेरा यह जीवन है। वह आशा-तन्तु न तोड़ना प्रभु! लता का सहारा जो वृक्ष है उसे न काटना, घने अन्धकार में दिखाई पड़ने वाली जो एक किरण है उसे जाने न देना प्रभु। सहूँगा, सहूँगा, प्रतीक्षा करूँगा, बाट जोहूँगा। जन्म-पर-जन्म पाकर, कम-से-कम एक बार तो तुम्हें देखने की आस है देव! एक बार तो वादा करो, यकीन दिलाओ तो बस है। वही मेरे लिए जीवनामृत है। इतनी करुणा हो तुम्हारी अन्तरात्मा!

३२

हृदयेश, तुम्हारी तथा मेरी प्रेम-लीला के बीच आने वाले ये कौन हैं ? दिन-रात मेरे पीछे पड़कर मुझे मोहित करने की कोशिश में लगे हैं। तुम्हें भुलाकर, दूर हटाकर स्वयं मेरे अन्तरंग में घर बसाना चाहते हैं। उन्हें मैं नहीं चाहता। अगर तुमने ही उन्हें भेजा हो तो भी मैं उन्हें नहीं चाहता देव! तुम्हारी छाया तक मैं उनमें नहीं देख पाता। जब तक उनमें तुमको नहीं देख पाऊँगा तब तक मैं उन्हें नहीं अपनाऊँगा। तुम्हारे अलावा और किसी को मैं अपना नहीं बनाऊँगा। 'अपना, तुम्हारा' कहते हुए पास आते हैं ये। माता-पिता, बीबी-बच्चे, भाई-बहन, साथी-संगी का नाता जोड़कर आते हैं ये। तो क्या प्रभु, वे लुटेरे नहीं हैं ? तुम्हें लूटने आये हुए चोर नहीं हैं ? कहो, कहो, एक बार तो मुझे सत्य बताओ अन्तरात्मा ! समाप्त करो इनकी दोस्ती, इनका उपद्रव बन्द करके तुम मुझमें बस जाओ प्रभु ! ओह, यह लीला कैसी है ? तुम्हारे साथ यह कैसी क्रीड़ा है। तुम्हारे संग यह कैसा प्रेम-मिलन है। एकाध क्षण की यह कैसी सुख-समाधि है। तुम सबमें गोचर होकर अनन्त काल तक यह खेल करते रहो न, यह आनन्द-दृश्य आँखों के सामने होता रहने दो न ओ मेरे प्राणेश्वर !

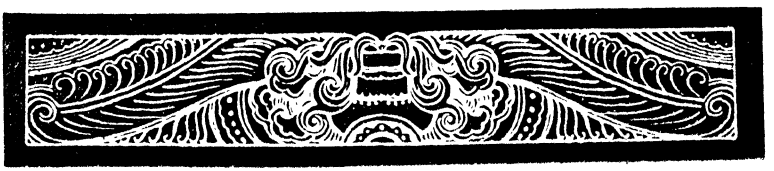

३३

अब मैं नहीं सुनने वाला। तेज़ी से तुम्हारी ओर जा रहा हूँ। नहीं, नहीं, प्रभु, रंग-बिरंगे ये खिलौने मेरी राह में न फैलाना। इस तरह बच्चे को न फँसाना। भूखे बालक को माँ के पास जाने दो। उसे रोककर पाप का हिस्सेदार न बनना। सुवर्ण-सुमन रास्ते में सजाकर उसे बहलाओगे तो वह बालक क्या कर सकेगा? बेचारा बालक बहुत देर तक खेल-खेल में समय बिताकर भूख-प्यास से परेशान हो बीच राह माता के दूध के लिए तरसेगा। वह पाप, अपने सिर न लेना। वह हठ, यह छेड़-छाड़ छोड़ दो। कमान से छूटे तीर की तरह अपने पास पहुँचने दो। मुझे मेरा निश्चय पूरा करो अन्तरात्मा!

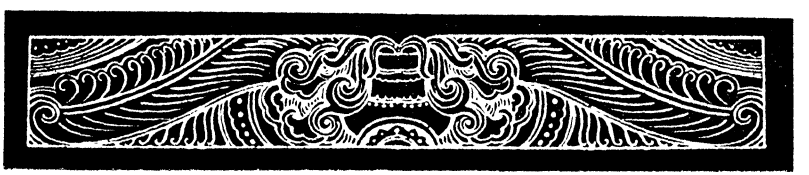

३४

राजनीतिक काम करने निकला मैं। बहुत बड़ा राजनीतिज्ञ हूँ न मैं। वाह, क्या चहल-पहल है। अपने अहंकार पर अब मुझे ही हँसी आ रही है। मुझे पूछता कौन है ? मुझसे हो ही क्या सकता है स्वामी ! राजराजेश्वर, तुमसे बिना पूछे, बिना कहे, बिना सुने, तुम्हारी आज्ञा बिना पाये तुम्हारे राज में काम करने वाला मैं कौन हूँ ? इतना भी समझ न सका मैं प्रभु ! अपनी राज-सभा दिखाओ देव, अपनी राज-सभा में मुझे सेवक बना लो और मुझे काम दो। मेरा अहंकार अब नहीं रहा, मेरा घमण्ड चूर-चूर हो गया प्रभु ! मुझसे जो काम हो सके वह मुझसे करा लेने की कृपा करो अन्तरात्मा ! 'मैंने किया, मैं करूँगा' इस तरह की बेकार बातें मैं नहीं करूँगा प्रभु ! बड़ी गलती हुई, बड़ा अपराध हुआ, क्षमा करो प्रभु, क्षमा करो।

३५

हाय, अब तक कितना गिरा हुआ था मेरा जीवन ! मेरा मन या तो वेश्या की विलास-वाटिका था या व्यभिचारी का अन्तर्गृह। कोई भी आता और चाहे जो तमाशा करता। कैसा वह असह्य खेल था, अप्रेक्षणीय दृश्य था, अमिलनीय मिलन था। ओह, क्षणिक सुख के लिए मेरा सर्वस्व लुट गया। हाय, हाय, अब पछता रहा हूँ मैं। अपनी नष्ट देह और मन की शक्ति की ओर देखकर मेरा दिल धड़कने लगता है, फूट पड़ता है, टूक-टूक हो जाता है। अब मैं क्या करूँ ? क्या इसका कोई उपाय नहीं है ? अब भी ज्ञानोदय न होगा ? क्या वेश्या कभी, किसी दिन यह न जान पायगी कि सतीत्व ही सच्चे सुख की निधि है ? क्या वेश्यागामी विट् की एक बार भी समझ में नहीं आयगा कि एकपत्नीत्व ही सुख का साधन है ? क्या उसी तरह मुझे भी एकनिष्ठा भक्त होने की बात न सूझेगी ? इधर-उधर घूम-फिरकर प्राप्त होने वाला अनुभव भी क्या अब समाप्त हुआ ? तुमने मार्ग, भोजन-वस्तु दी थी उसे बासी बनाकर बिगाड़ दिया। शत्रु-संहार के लिए तुम्हारी दी हुई तलवार से अपनी ही छाती चीरकर चोट पहुँचा ली प्रभु ! पछताया, अब दया दिखाकर कृपा करके मेरी रक्षा करो अन्तरात्मा ! मेरे थके, माँदे, हारे मन को अपनी ओर खींचकर अपने में लीन कर लो देव ! विष छुड़ाकर अमृत पिलाकर बचाओ इस बालक को दयासिन्धु भगवन् !

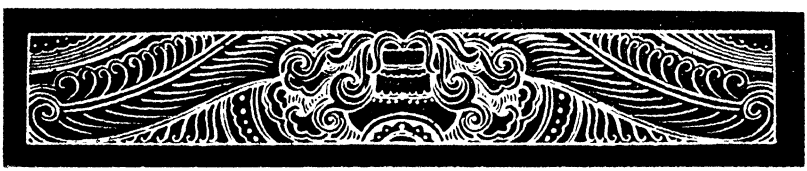

३६

अतुल आशा से आकुल हो रहा हूँ देव, तुम्हारी आशा प्रबल आकांक्षा बनकर दिन-रात मुझे सता रही है प्रभु ! तुम्हें देखूँ, तुमसे मिलूँ, तुमसे खेलूँ, यही आस है मेरे दिल में। लेकिन प्रभु, मैं स्थूल तुम सूक्ष्म मैं साकार तुम निराकार, मैं जड़ तुम चेतन, मैं पापी तुम निष्पापी, मैं दुःखी तुम आनन्दमय, मेरा कुल अलग और तुम्हारा कुल अलग। जब इस तरह द्विधा स्थित है तो सगाई कैसे होगी ? मेरे हृदय में अनन्त आशा बोकर सता रहे हो प्रभु ! यह तो हाथी के आसमान में उड़ने की, काक के हंस बनने की और गधे के गाने की तरह है स्वामी ! क्या यह मालूम न हो मुझे ? जो कुछ भी हो, क्या मैं यह आशा छोड़ सकूँगा ? नहीं, नहीं, बिलकुल नहीं। यह शरीर सूखकर पतली लकड़ी की तरह भी हो जाय, देह थककर जर्जर भी हो जाय, तो भी यह आशा नहीं छूटेगी। गाय का बछड़ा उसके सिवा और किसकी आस करेगा ? माता को छोड़कर बच्चा किस पर भरोसा रखेगा ? अन्तरात्मा, तुमसे प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारी शरण में आता हूँ। मुझे सुमन-सुगन्ध-सा बनाकर अपनी ओर बहने दो, सूर्य-किरणों-सा बनाकर अपने चरण-कमल की ओर बहने दो, सूर्य-किरणों-सा बनाकर अपने चरण-कमल की ओर बढ़ने दो। माया-निर्मित गगन से मिलाकर अपने में लीन होने दो करुणा-कर ! मेरे लिए दूसरा रास्ता ही कौन-सा है।

३७

कहते हैं कि गुरु के बिना गति नहीं। क्या यह सच है स्वामी? मेरा पढ़ा लिखा, देखा-सुना, सब बेकार हुआ? सब पर पानी फिर गया? प्रभु, अब मेरा क्या होगा? तुम्हारे सिवा और कौन है मेरा सहारा? अनुभव को ही गुरु माना, अनुभव की ही शरण ली, अनुभव का ही अनुसरण करता आया, क्या यह मेरा अपराध है अन्तरात्मा, अनुभव मूर्त बनकर भी हमारा गुरु नहीं बनता? कहो अन्तरात्मा, कहो, कहो! अपनी सत्यवाणी से मेरा संशय उच्छिन्न करो स्वामी! कहो कि मूर्तिमान् अनुभव ही गुरुदेव है और ऐसा अनुग्रह करो कि हमेशा उसी की आराधना करता रहूँ।

... ...

गुरुदेव, मेरे गुरुदेव, कहाँ हो तुम? दिन-रात तुम्हारे लिए तड़प रहा हूँ। कहाँ हो तुम? मेरा मन मथकर अमृत निकालने वाले मन्दर, कहाँ हो तुम? मेरे हृदय की गुफा में प्रकाश की भाँति जगमगाने वाली ओ दिव्य शक्ति, कहाँ हो तुम? दर्शन दो मुझे एक बार! शरीर गुण का नाश करके, नव दिवाकर का तेजस् दिखाकर, तत्व मार्ग पर चलाकर मेरे अन्तरंग को सान्त्वना दो। ओ गुरुदेव, धन्य बनाओ मुझे!

३८

गुरुदेव, तुम्हारी खोज करके जब मैं हैरान हो रहा हूँ तो कुछ लोग 'गुरु, गुरु' कहते मेरे पीछे फिर रहे हैं। कैसा है यह दृश्य! इसे देखकर तुम हँस रहे होगे न? मैंने ही दिव्य प्रकाश नहीं देखा तो मैं उन्हें क्या दिखाऊँ? जो स्वप्न मैंने ही नहीं देखा उसे दूसरों को क्या कहकर सुनाऊँ? यह तो भिक्षुक से भिक्षा माँगने की तरह हुआ। पर प्रभु, वे तो मेरा पीछा नहीं छोड़ेंगे। कितना निर्मल विश्वास है उनका? दूध पीता बच्चा जिस प्रकार माता का ही भरोसा रखता है उसी प्रकार वे मेरे ही भरोसे आते रहे हैं प्रभु! क्या मैं उस विश्वास के योग्य हूँ? नहीं, नहीं, बिलकुल नहीं! उनका विश्वास मुझ पर नहीं, किन्तु मेरे अन्तर्गत, तुम पर मेरा विश्वास है स्वामी! उन्हें शान्त करने की जिम्मेदारी तुम्हारी है प्रभु! मेरे लिए न सही, उनके लिए अपनी अमृत-धारा मुक्त रूप से बहाकर उन्हें तृप्त करो अन्तरात्मा! तुम्हारे भरोसे रहने वालों की रक्षा करने वाले तुम हो! 'आश्रितों का परिपालक' तुम्हारी उपाधि है। नित्य सत्य का मार्ग दिखाओ, शोक-सागर से पार करो देव! अब इस आतुर जीव की आशा भंग करके जंगल-जंगल न भटकाओ प्रभु!

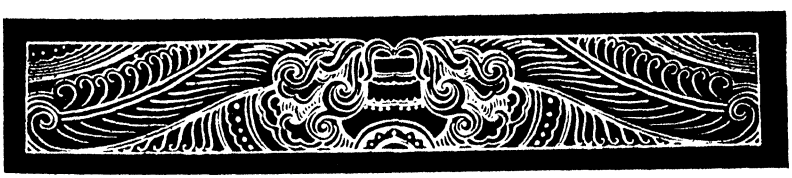

३६

मेरे अन्तरंग के स्वामी, अपना राज छोड़कर और कितने दिन बाहर रहना चाहते हो? अगर यों तुम चले जाओगे तो यहाँ सब अराजक होगा न? न जाने अब तुम कहाँ हो, किधर हो। मैं प्रतीक्षा करते-करते परेशान हो गया। अब मैं क्या करूँ? देखो, तुम्हारी अर्चना के लिए सद्विचार-सुमन चुनकर रख दिए हैं कि उनकी मधुर महक तुम्हें इस ओर आकर्षित करे। अपने हृदय में असीम प्रेम-धूप जलाई है मैंने। क्या वह तुम्हारी ओर अपना सुगन्ध नहीं बहायगी? सदाचार की सुमन-माला हाथ में लिए कब से मैं खड़ा हूँ, इतना विलम्ब क्यों? इस विलम्ब से क्या यह माला मुरझा न जायगी? प्रभु, और कितनी देर खड़ा रहूँ? मैं तो अपना कर्तव्य कर दूँगा। यह लो, अपना सर्वस्व अर्पण कर दूँगा। देना मेरा फर्ज है, तो लेना तुम्हारा कर्तव्य है। अब मेरा हाथ पकड़कर अपने हाथ की छड़ी बनाकर चलाने की जिम्मेदारी तुम्हारी है, न कि मेरी; मेरी अन्तरात्मा!

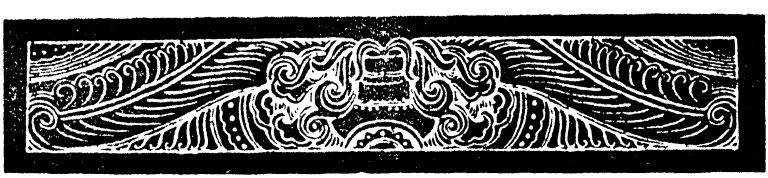

५०

तुम्हें खोजकर थक गया हूँ स्वामी ! यह कैसी तुम्हारी माया है ? मैं जानता हूँ कि तुम कहाँ हो ? लेकिन क्या ? तुम तो मेरे हाथ लगते ही नहीं। माया मृग की तरह क्यों बहकाते हो मुझे ? इस दुनिया में हर जगह तुम हो, फिर भी तुम मुझे दिखाई नहीं देते ! मेरे शरीर के रोम-रोम में बसे हो, फिर भी तुम्हारे स्पर्श का अनुभव मुझे नहीं होता। यह कैसा तुम्हारा इन्द्र-जाल है ? कभी-कभी दिखाई देते हो, फिर भी मिलते नहीं हो। तुम्हें खींचकर छाती से लगाकर अपना बना लेने की अनन्त आकांक्षा है। प्रभु, सर्वव्यापी होते हुए भी, सफेद परदा गिराकर कितना मुझे छलते रहोगे स्वामी ? हाथ का कौर मुँह तक नहीं पहुँच पाता प्रभु ! गोद के बच्चे को अगर माँ दूध न पिलावे तो उसकी हालत क्या हो अन्तरात्मा !

४१

यह मेरा जीव भी कैसा है देव ? हवा में रखे दीपक की तरह, सलिल के बुदबुदे की भाँति, घास पर के ओस-कण के समान मुझे यहाँ क्यों ला पटका ! इस क्षणिक क्षुद्र जीव को कैसी-कैसी आशा-आकांक्षाओं में जकड़ दिया है ? वे हैं समुद्र-तरंगों के सदृश अनन्त, आसमान की भाँति विशाल ! इस छोटे-से चित्त में तुमने इन्हें भर कैसे दिया ? यह तो एक चमत्कार है । क्या मैं इन आशाओं की पूर्ति कर सकूँगा ? क्या तिनके से पहाड़ उठाने के लिए मुझसे कहना चाहिए ? सीढ़ी के सहारे आकाश छूने की मुझे आज्ञा देनी चाहिए ? नाखून से पेड़ काटने का हुक्म मुझे देना चाहिए ? प्रभु, क्या तुम्हारे लिए यह उचित है ? तुम्हें यह शोभा देता है ? कहाँ मेरी जीव-शक्ति और कहाँ इन आशाओं की परिमिति ? यह कैसी असम्बद्धता है । क्या यही मेरे दुःख का बीज नहीं है प्रभु ! तुम्हारे लिए तो यह एक तमाशा है, पर मेरे लिए जान का खतरा है । बस करो अब यह तमाशा, मसखरापन ! मेरी जान का आखेट करना रोक दो । मेरी आशाएं कम कर दो और मेरी शक्तियाँ बढ़ा दो । लेकिन तुम्हारे राज में जो कुछ भी हो, उसकी परिमिति रहे अन्तरात्मा !

४२

यह मेरे अन्तरंग का आर्त आलाप है स्वामी, इसे तनिक सुनो तो ! अगर तुम इसे अब नहीं सुनोगे तो मेरा और तुम्हारा विच्छेद निश्चित है। इस शरीर और आत्मा का विच्छेद निश्चित है। यों अब रहा नहीं जाता मुझसे। ऐसी स्थिति सही नहीं जाती मुझसे। मेरे अन्तःकरण का शोक ही मेरा सर्वोत्तम साधन है। स्वामी, तुम्हारा कठिन कलेजा पिघलाने के लिए दूसरा उपाय ही कौन-सा है मेरे पास ? प्रभु, ऐसी उपेक्षा क्यों ? देखो, एक बार मेरी ओर तो देखो! दिन और रात तुम्हारी राह देख रहा हूँ। तुम्हारे विछोह से एक-एक छिन एक-एक युग-सा लग रहा है मुझे ! जीव-जन्तुओं से पूर्ण जगत् भी एक जंगल के समान है। ये जिस्म, जीव भी भारी बोझ से प्रतीत होते हैं। भव एक बन्धन-सा हो गया है। पधारो प्रभु, मेरे हृदय-मन्दिर में मंडित हो इस बन्धन से मुक्त कर दो और यह थकावट, यह दुःख दूर कर दो। मेरा मन निर्मल होकर तुम्हारा निवास-स्थान बने। मेरा भाव तुम्हारे उदय से उत्तम हो। मुझसे असत्य छुड़ाओ सत्य कहलाओ, वीर कर्म कराओ, अपने लोगों में मिलाओ। तुम्हारी तरह मेरा भी जीवन तेजयुक्त, प्रभावयुक्त, दुष्टतारहित, सर्व हितयुत और लीला से ओतप्रोत बने। प्रभु, यही मेरी विनीत प्रार्थना है तुमसे। आओ, आओ, मैं अब अधिक देर नहीं सह सकता अन्तरात्मा !

४३

आज मेरा जन्म-दिन है। इस शरीर के पैदा होने का दिन है, जो बरस में एक बार आता है। अदृश्य से दृश्य सृष्टि में मेरे आने की याद है यह। लेकिन इस स्मरण से फ़ायदा ही क्या? एक साल में पृथ्वी ने प्रभाकर की प्रदक्षिणा पूरी की, सज्जनों ने कैसे-कैसे बड़े-बड़े काम किये एक ही वर्ष में। मगर मैंने क्या किया? प्रभु, मैंने ऐसा कौन-सा काम किया है इस दिन की याद करने के लिए? एक साल में मेरी उन्नति भी क्या हुई है? मैंने कितनी राह तय की है? इस तरह मुझे जन्म देकर बड़ा क्यों कर दिया प्रभु, इस प्रकार मेरे जन्म-दिन की याद क्यों दिलाते हो? हाथी में हाथी की ताक़त हो तो बकरी में बकरी का बल चाहिए न? यों दुर्बल बनाकर ज़िन्दा रखने की अपेक्षा इस जीवन-यात्रा का अन्त कर देना ही बेहतर है। क्या तुम्हारे बल का भंडार क्षीण हो गया? या तुम्हीं कंजूस बन गए हो? नहीं, नहीं इस तरह की याद मुझे नहीं चाहिए। इच्छा होती है कि जन्म-दिन ही मृत्यु-दिन हर जाय। अगर मुझे ज़िन्दा ही रखना हो तो स्वामी, जिस तरह पेड़-पौधे पनपते हैं और बढ़ते हैं उसी तरह मेरी सारी शक्तियों को बढ़ने दो। जिस तरह उनके फूल भूमाता के चरणों पर गिर पड़ते हैं उसी तरह मेरे तन-मन-प्राण अपने पाद-पद्मों पर चढ़ने दो। जिस तरह उनके फल आदमियों और जानवरों के आहार-पदार्थ बनते हैं उसी तरह मेरे सारे कामों को लोकोपकारी बना दो। इस तरह जीवित रखो स्वामी, आज मेरी यही विनीत प्रार्थना है अन्तरात्मा!

४४

'प्रभु, प्रभु' कहते तुम्हारा ध्यान करें तो लोग कहते हैं कि तुम प्रत्यक्ष हो जाओगे और प्रसन्न होकर इच्छा-पूर्ति करोगे। पर प्रभु, जप करके मैं अब थक गया हूँ। तुम्हारी दया की प्रतीक्षा करके फूट गई मेरी आँखें। क्या जमीन जोते और बोये बिना केवल जप-तप से अनाज पैदा कर सकती है? क्या पेड़ पूजा से फल दे सकता है, उसे सलिल से सींच-सींचकर बढ़ाये बिना? क्या सिर्फ अर्चना से वीणा बज सकती है तार बाँधकर ताल के मुताबिक उसे बजाए बिना? तुम्हारे सभी कार्य इस प्रकार नियम-नियंत्रित हैं स्वामी! यह नियम जानकर, उसके अनुसार काम करने पर ही यश की आशा है, अन्यथा नितान्त निराशा! मैं आलसी, अज्ञ, डरपोक हूँ, बैठे-बैठे जप तप करके इह और पर दोनों की साधना चाहता हूँ। अब जान गया जप का अर्थ, तुम्हें पाने की सच्ची राह। प्रभु, वस्तु धर्मों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न ही तुम्हारा जप है। उन धर्मों का अनुकरण करके लोक-हित करना ही तुम्हारा तप है। उन सबको श्री चरणों पर चढ़ाना ही तुम्हारी पूजा है। इतना करके निश्चिन्त, निरभिमानी और निरासक्त रहना ही मोक्ष है न प्रभु... अन्तरात्मा!

४५

मेरे एक बन्धु का कथन है कि जनता ही इस संसार में सच्चे सुख की खोज करती है। वह सच्चा सुख क्या है ? सच्चा सुख इस संसार में है कहाँ ? यहाँ वह कैसे मिलेगा ? हाय, हाय, मेरी सारी जिन्दगी दुख की हो गई तो ? जड़ वस्तु की तरह, यंत्र की तरह इस संसार के काम कर रहा हूँ मैं। उस आकाश को साथी हिमालय की पवित्र तपोभूमि की ओर या साधु सत्पुरुषों की सुसंगति की ओर जा रहा है मेरा मन ! 'आत्मबन्धु, इतनी निराशा क्यों ? संसार के प्रति इतना हेय भाव क्यों ? इसे भी उसी ने बनाया है न ? क्या यह विष-कूप है ? अगर वह हो भी तो इसे अमृतमय बनाने की चमत्कारपूर्ण शक्ति आत्मा में नहीं है क्या ? तुम जो खोज रहे हो वह आत्मानन्द है ! वह तो संसार में भी नहीं है, हिमालय के पदतल पर भी नहीं है, सत्पुरुषों के चरणों के पास भी नहीं है। वह तो आत्मा में ही है। निर्मल मन की अन्तिम धारा है वह ! आत्मा आनन्दमय है, आनन्दस्वरूप है ! आत्मा ही आनन्द है और आनन्द ही आत्मा ! निरालम्ब स्वयंभू सुख ही आनन्द है। इस ज्ञान के अनुभव से ही आनन्द की प्राप्ति है। हृदय के अन्दर इस ज्ञान का स्रोत जब तक नहीं फूट पड़ता तब तक यहाँ-वहाँ आने-जाने से क्या लाभ ? अमृत की आशा क्यों ? निष्काम सर्वार्पण भाव ही हृदय-मन्दिर की कुञ्जी है। ओ अन्तरात्मा, यह साधना करने के लिए हमें बल-शील देने की कृपा करो

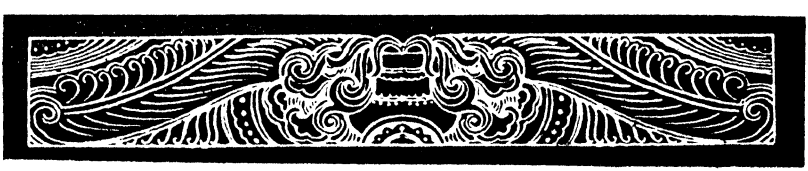

४६

ओह ! नभ के ये नक्षत्र, ये अनगिनत तारागण एक-एक करके काली कराल रात में निकलते हैं और निशा देवी की मुकुट-मणि की भाँति नभ-मण्डल को छविमान कर देते हैं, अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार चमकते, दमकते अनन्त पथ पर आगे बढ़ते रहते हैं। उनका उदय और अस्त दोनों मैं हर रोज़ देखा करता हूँ। पर, क्या उनका आविर्भाव और अन्त कोई जानता है ? वे क्यों दिखाई पड़ते हैं और क्यों छिपते हैं ? क्या कोई इसे जानता है ? क्या उनकी चमक से अँधेरा दूर होगा ? नहीं ! क्या उनके प्रकाश से पथिकों को राह दिखाई पड़ेगी ? नहीं, नहीं, हरगिज़ नहीं। क्या उनके आलोक से किसी ग़रीब का घर भी आलोकमय हो सकता है ? नहीं, बिलकुल नहीं ! फिर भी विश्व-माता घन-नील-पात्र में यह चमेली के सुमन भरकर प्रशान्त दिशा में तुम्हारे गूढ़ पाद-पद्मों पर प्रतिदिन चढ़ाया करती है। उन सितारों में मुझे एक सितारा ही बना दो प्रभु ! उन चमेलियों में मुझे भी एक चमेली बना दो देव ! प्रभु, मैं अपना जनन नहीं जानता और मरण भी नहीं जानता। किसलिए जाता हूँ, किसलिए आता हूँ, यह भी नहीं जानता ! मेरी समझ में यह भी नहीं आता कि मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाऊँगा। यहाँ रहते चमकते-दमकते कम-से-कम एक बार तो तुम्हारे चरण-कमल देख पाऊँ इससे मैं अपना जीवन सार्थक समझूँगा प्राणेश्वर ! इसी के लिए तड़प रहा हूँ, माँग रहा हूँ, गा रहा हूँ ! तुम्हें तंग करके यही माँगता हूँ ! यही प्रदान करके मुझे शीघ्र पार लगाओ अन्तरात्मा !

४७

ओह ! उधर गगनांगण में तारावली, इधर घर-आँगन में दीपावली। यह कैसा दीपोत्सव है देव, तुम्हारा सारा दिव्यांगण भक्ति-दीपमालिका से दमक रहा है। नीलाकाश से नक्षत्र-समूह की छाया पृथ्वी पर पड़ रही है। जैसे जड़ में चेतन का मन्द प्रतिबिम्ब प्रदर्शित होता है। यह देखो, इस नदी में अनन्त दिव्य रूप दीप दौड़ते जा रहे हैं। भावुकों का विश्वास है कि ये तुम्हारे चरणों के पास पहुँचते हैं। सुकमार सुन्दरियों की श्रद्धा-भक्ति, उनका सुकोमल भाव-वैभव, उनके हृदयों की अनन्त, अस्फुट आकांक्षाएं, उनके लगाये गए इन दीप्त दीपों के द्वारा तुम्हारे पाद-पद्मों के पास पहुँचती हैं। प्रभु, मैं ही एक ऐसा हूँ जो इस विशाल जीवन प्रवाह के तट पर चुपचाप आलसी की भाँति बैठा सब-कुछ देख रहा हूँ। क्या करूँ स्वामी ! अब समाप्त हुआ यह आलस्य ! अपनी बहनों का सिखाया हुआ सबक ग्रहण करके उसके अनुसार चलूँगा। इस कार्तिकोत्सव में मैं भी अपना हृदय-दीप जला दूँगा और तुम्हारे चरणों पर उसे अर्पित करूँगा। उसे स्वीकार करके धन्य बनाओ मुझे अन्तरात्मा !

४८

यह कैसी प्रशान्त अर्धरात्रि है ! सन्नाटा, चारों ओर मृत्यु-सी निस्तब्धता, शान्ति। चाँद के शीतल हाथों ने भूदेवी को थपकियाँ देकर सुला दिया है। हवा तक नहीं चलती मानो एकाएक जहाँ-की-तहाँ रुक गई हो। कहीं किसी कुत्ते का भोंकना और कहीं किसी चिड़िया के चहकने की आवाज सुनाई दे रही है। इनसे उस शान्ति की गम्भीरता ही तो बढ़ती है जैसे कि किसी एक दर्पण के समान स्वच्छ स्थिर स्तब्ध सरोवर में कंकड़ फेंकने से गम्भीरता गोचर होती है। पर, प्राणनाथ, इस मेरे हृदयांगण में यह कैसी उथल-पुथल ! बाहर की यह शान्ति और बदन से लगी हुई इस रात की शान्ति मेरे हृदय में प्रवेश नहीं कर सकती ? शान्ति देवी मेरे मन की दहलीज के भीतर पाँव नहीं रख सकेगी ? मेरे इस छोटे मनोमन्दिर में यह कौन-सी चलन, कौन-सी तड़प, कौन-सी व्याकुलता है ? क्या यह तुम्हारी विरह-व्यथा है या अतृप्त आकांक्षाओं की अस्वस्थता ? प्रसुप्त संकल्पों का स्वप्न-प्रभाव है या न मरने वाली वासना का तांडव ? क्या समझूँ देव ? तुम्हारे सिवा इसे कौन शान्त कर सकता है प्रभु ? इस हृदय के गूढ़ प्रश्न, उसकी अस्थिरता का बीज, उसके असाध्य रोग की दवा कौन जान सकता है तुम्हारे सिवा ? अन्तरात्मा, अब तुम्हीं हो मेरा सहारा ! प्राणेश्वर, तुमने हाथ छोड़ दिया तो मैं और किसका सहारा लूँ !

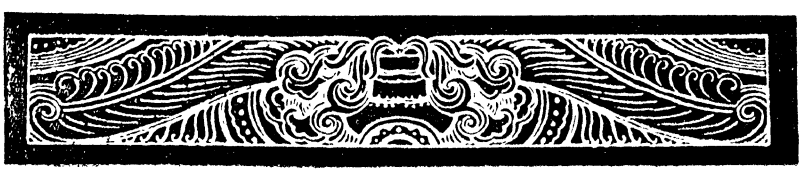

४६

प्रभु, मैं तुमसे यह प्रार्थना कभी नहीं करूँगा कि मुझे आधि-व्याधियाँ, आफ़त और तकलीफें नहीं चाहिएं। इनसे रहित नीरस जीवन मुझे नहीं चाहिए प्रभु! लेकिन तुमसे यही प्रार्थना करूँगा कि तुम इनमें रहो! आवें, ये सभी आवें! मुझ पर घनघोर वर्षा की तरह बरसे, मधुमक्खियों की तरह मुझे घेरें। मगर, तुम मुझे हमेशा अपना मुँह दिखाते रहो तो प्राणप्यारे, मैं ये सब हँसते-हँसते सह लूँगा, मुस्कराते हुए पथ पर चलूँगा और संसार का भार सम भाव से तोलकर फेंक दूँगा। माँ की दवाई की तरह, वैद्य के कड़ुवे कषाय की तरह सब पीकर, पचाकर अमृत बनूँगा मैं प्रभु! रोग की दुस्सह पीड़ा में, दुश्मनों से दी जाने वाली तकलीफों में, कैदखाने के कष्टों में, बड़े युद्ध के घावों में, सृष्टि के आघातों-अपघातों में विरह-व्यथाओं में तुम्हारा दिव्य स्पर्श मुझे होता रहे प्रभु! अपना कल्याणमय रूप देखने वाली आँखें देकर मुझे धन्य बनाओ अन्तरात्मा!

५०

यह कैसा कर्तव्य सौंप दिया देव ? मन पर शासन करने की शक्ति है मुझमें ? कोई नहीं है, अब आस-पास, इर्द-गिर्द कोई नहीं है, मेरी मदद के लिए कोई नहीं है। मैं-ही-मैं हूँ, मेरे विचार-ही-विचार हैं, भाव-ही-भाव हैं। मेरे इस छोटे-से हृदय-पात्र में यह कैसा प्रचंड भाव-समुद्र है, यह कैसा विशाल विचार-सागर है। प्रभु, इनमें मेरी हालत एक ही डाँड की नाव की तरह है। भावनाओं की यह आँधी, विचारों का यह चढ़ाव, अन्तर का यह ज्वार-भाटा, इनमें भटक-भटककर, देख-देखकर, परेशान हो ऊब गया हूँ स्वामी ! इन पर शासन करके बचने की आशा अब कहाँ है प्रभु ? इस तरह जहाँ तुमने फेंका, वहीं तड़पकर छटपटाकर मृत के समान हो गया मेरा जीवन ! मेरे कोमल छोटे स्वप्न मन ही में तहस-नहस हो गए, मेरी आकांक्षाएं जहाँ-की-तहाँ कुम्हला गईं। अब और किसकी शरण में जाऊँ प्रभु ? अन्तरात्मा ? क्या तुम्हीं मेरे ध्रुवतारा नहीं हो ? इस घन अन्धकार में तुम्हीं मेरी मशाल हो, मेरी आशा की किरण हो और मेरी संजीवनी हो। प्रभु, प्रभु, रक्षा करो, हृदय के द्वेष मिटा दो, इस जोशीले घोड़े पर चढ़ने की कला सिखा दो, इस दीवाने मन पर शासन करके जीने का आनन्द देने की कृपा करो अन्तरात्मा !

५१

ओह ! यह कैसी उपजाऊ भूमि है। अनाज, फल-फूल, लता-मंजरी-आदि पैदा करके मानव-जीवन को प्राण-पराक्रम से सफल बनाती है यह भूमि। यह वायु, शीतल वायु, वह रोशनी, तेजोमय प्रकाश, यह विशालता देश, काल, मनुष्य के खेल-कूद, आनन्दमय दृश्य उसे बहलाते है। भूगर्भ अपने दिव्य धातुओं का दान कर मनुष्य की भलाई करना चाहता है। लेकिन क्या ओ मानव, मूढ़ मानव, तुम्हारी क्या दशा हो गई है ? भूमि के भीतर की, बाहर की, नीचे की यह सारी सम्पत्ति-समृद्धि तुम्हारे ही कुल के दुःख का कारण नहीं बनी ? कैसा यह तुम्हारा समाज और कैसी उसकी रचना ? कितना अन्याय, कैसी असमानता, कितना मत्सर, कैसा दमन है तुम्हारे समाज में ? 'मेरा मेरा' कहते हर एक आदमी सब-कुछ अपना बनाने की इच्छा करता है। यह कैसी बढ़ने की आशा, यह कैसी आसुरी आशा है ? ओ देवों के देव, अन्तरात्मा, इन मूर्ख मनुष्यों को इससे कब छुड़ाओगे ? उनमें सच्चा बन्धु-भाव कब स्थापित करोगे ?

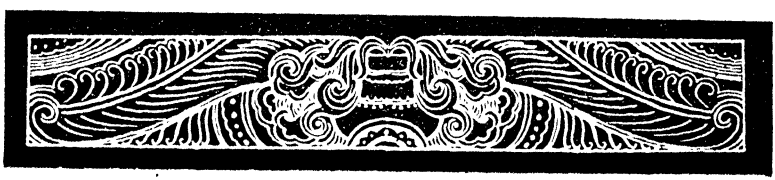

५२

सब-कुछ होने पर भी सिर्फ बुद्धि और समझ न होने की वजह से इस मानव-वंश का नाश हुआ। इतना भी समझ में नहीं आता कि यह भूमि सबकी है, यह रोशनी सबकी, है; यह भाव सबके मन में क्यों नहीं उत्पन्न होता? बुद्धिमान् और मूर्ख लड़ते हैं कि यह मेरा है, वह मेरा है। क्या यह उचित है? समझदारों की यह लड़ाई देखकर पागल भी हँसते हैं। तीनों लोकों में हँसी का पात्र बन गया है यह मानव इस लिए कि वह दैव-दत्त सुख-साधनों को बराबर बाँटे बिना लड़-झगड़ रहा है। अब भी इन्हें अक्ल नहीं आती? नूर दिखाई नहीं पड़ता? ज्ञान नहीं होता? अब तुम इन्हें इस कीचड़ में से ऊपर उठाओ अन्तरात्मा! क्या तुम ऐसा नहीं करोगे? और कितने दिन परीक्षा लेना चाहते हो इन बाल-बुद्धि वालों की?

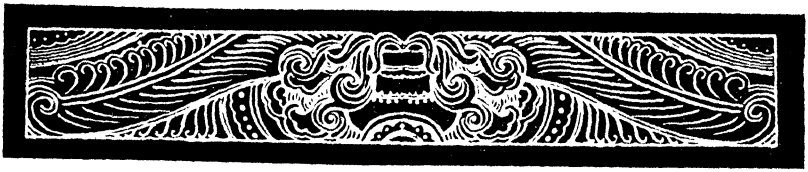

५३

न जाने इस अन्धकार का अन्त कब होगा और प्रकाश कब फैलेगा ? प्रभु, न जाने कब इस स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ स्थापित होगा। न जाने कब यह बेवकूफी जायगी और जानकारी पैदा होगी इस इन्सान की दुनिया में। न जाने कब नीति, सत्य, बन्धुता का निवास-स्थान बनेगा यह पागल समाज ! यह जमीन-जायदाद, यह जर-जवाहरात, यह सब नजर आने वाली धन-दौलत समाज की है, जब तक अपनी शारीरिक, मानसिक, नैतिक शक्तियों का विकास कर, बढ़ाकर इसे समाज-देवता के चरणों में अर्पित करने की प्रवृत्ति हर एक आदमी के मन में घर न करेगी तब तक समाज-संगठन नामुमकिन है देव ! ऐसा कब करना चाहते हो प्रभु ? यों कब करके मानव-कुल की रक्षा करना चाहते हो अन्तरात्मा ?

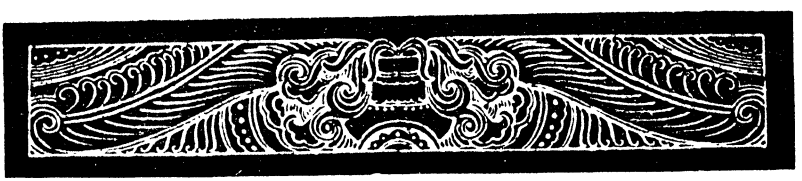

५४

देव, मैं तुम्हारा दुलारा दुधमुँहा बच्चा हूँ न ? तुम्हारा प्रिय पुत्र हूँ न ? तुम्हारी प्रकृति देवी की गोद में पालन-पोषण हुआ है, उसके हाथों के हिंडोले पर खेला-कूदा हूँ। वन का वृक्ष जिस तरह प्रकाश की ही ओर अपना पल्लव फैलाता है, मत्त मधुप जैसे पुष्प के मधु रस की ही ओर गुंजन करता बढ़ता है, उसी तरह मेरा मन और इन्द्रियाँ तुम्हारी सृष्टि की सुन्दर मनोहर वस्तुओं की ओर आकर्षित होती हैं विश्व रूप प्रभु ! पर, देखो ये शुष्क निग्रही लोग आ गए और कहने लगे कि यह घातक है, वह घातक है, मीठा मत खाओ, सुन्दर वस्तुओं को मत देखो, सुरीला स्वर मत सुनो, कोमल वस्तु का स्पर्श न करो, स्वादिष्ट वस्तु का सेवन मत करो ! उन्हें इस बात का डर है कि मेरा मन उनमें फँसकर तुम्हारी ओर अग्रसर न होगा। उनका कहना है कि पेड़ के नीचे रहकर, भिक्षा से पेट भरकर दण्ड भोगते रहना ही तुम्हारे पास पहुँचने का मार्ग है। स्वामी, प्रभु, क्या यही तुम्हारे निकट आने का मार्ग है ? क्या इसके लिए, इस तरह नीचे कुचलने के लिए इन इन्द्रियों को पैदा किया ? इसके लिए, इस तरह पूरा परित्याग करने के लिए निर्माण किया यह विविध विश्व ? क्या मैं यह विश्वास करूँ कि यह जीव को जकड़ने के लिए तुम्हारा फेंका हुआ फंदा है ? अन्तरात्मा, यह पहेली तुम्हारे सिवा और कौन सुलझा सकता है ?

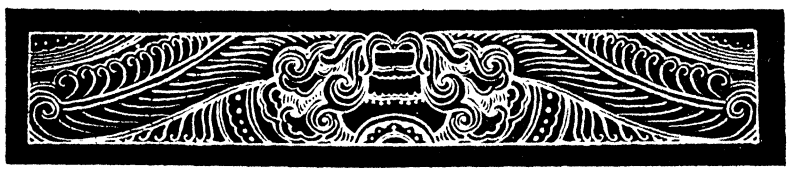

५५

प्रभु, तुम्हें ढूँढ-ढूँढकर थक गया, तुम्हारी बाट जोह-जोहकर ऊब गया, हार गया। राम-नाम का जप किया तो रामायण के मानव राम के दर्शन हुए, किन्तु सर्वकर्त्ता, सर्वधर्त्ता, सर्वव्यापी तुम मुझे दिखाई नहीं पड़े। 'कृष्ण कृष्ण' पुकारा तो गोपी-वल्लभ, चक्रधर, पार्थ-सारथी के दर्शन हुए, लेकिन, साक्षात् विश्वम्भर दिखाई नहीं पड़ा। शिव का ध्यान किया मुण्डमालाधारी रुद्र गोचर हुआ, पर विश्व-लीला-विहारी शक्ति दिखाई नहीं पड़ी। कई लोग कहते हैं कि हमने तुमको देखा, तुमसे बातें कीं और तुम्हारे साथ खेले। क्या यह सच है गुणातीत प्रभु ? या अपनी शुद्धीकृत या ध्येयीभूत, या कल्पित स्व आत्मा को ही देखकर अपने को कृतार्थ समझा उन्होंने ! प्रभु, किस मोह-जाल का परदा डालकर उन्हें छकाया, कहो तो अन्तरात्मा !

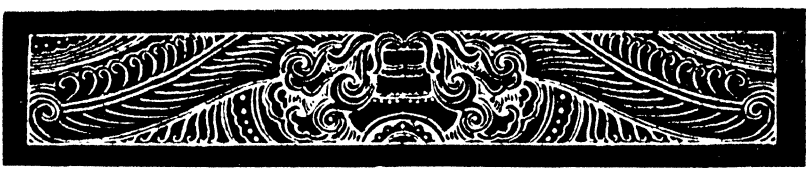

५६

प्रभु, प्रभु, तुम कहाँ हो ? तुम्हारे दर्शन कब होंगे मुझे ? मैं जानता हूँ उन राम-कृष्णों को, उन विष्णु-शिवों को। वे सब हमारी कल्पना के खिलौने हैं, गुड़िया हैं। हम भी कैसे पागल हैं। तुम्हें हाथ-पाँव, पंचेन्द्रिय देकर, तुम पर मनुष्य के जैसे गुणों का आरोप करके, हमने तुम्हें मानव बना दिया है। ढेर-ढेर पुराण लिखकर, तुम्हें उनका नायक बनाकर नचा दिया है। चार हाथ, शंख चक्रादि की कल्पना करके, चाँद व नदी सिर पर रखकर शेष-शैया पर सुलाकर, न इधर का, न उधर का प्राणी बनाकर पूजा की है। बस करो अब यह दिल्लगी, आकार-रहित को आकार देकर, गुणातीत को सगुण स्वरूप देकर, विविध रूप की कहानियाँ रचकर, 'हमने परमात्मा को देखा, हमने परमात्मा को देखा' कहने वाले हम भी कैसे मूर्ख हैं ? इनमें भी तुम हो सकते हो, लेकिन प्रभु, मैं जानता हूँ कि ये हो तुम नहीं हो, बिलकुल नहीं हो ! तुम निराकार हो, गुणातीत हो, सत् हो, चित् हो, आनन्द हो, आदि शक्ति हो। तुम्हारे नियमों के द्वारा तुम्हें देख सकेंगे, न कि तुम्हें साक्षात् देख सकेंगे, तुम्हारी कल्पना नहीं कर सकेंगे। नित्य निर्मलानन्द की प्राप्ति के लिए तुम्हारे नियमों का पालन करना ही परम धर्म की चरम सीमा है न स्वामी ? अपने सारे नियमों को अच्छी तरह जताकर आनन्द की राह बताओ अन्तरात्मा !

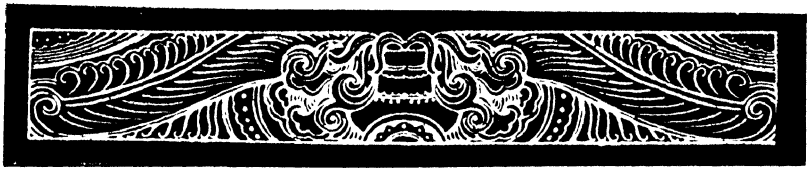

५७

क्यों स्वामी, ऐसी नितान्त निर्दयता क्यों ? स्वयंवर के लिए आई हुई योग्य वधू को क्यों इतनी विरह-व्यथा देते हो ? इसमें तुम्हें कौन-सा सुख मिलता है ? इस तरह सताने वाले तुम्हें 'करुणानिधि' नाम किसने दिया ? हाँ, हाँ, यही वह संकेत-स्थान है। इसमें तनिक भी शक नहीं ! हाय, मेरे ही आने में देरी हो गई क्या ? क्यों प्रभु, पहले ही आकर मेरी प्रतीक्षा करके परेशान होकर चले गए ? हाँ, यह देखो, इस वन में जो पद-चिह्न पड़े हैं वे तुम्हारे ही हैं न ? यह कस्तूरी-परिमल तुम्हारे ही शरीर की सुगन्धि है न ? हाय, मेरी बाट जोहते-जोहते जी ऊब गया और क्रोध से यह सुन्दर सुमन-माला तोड़कर इधर-उधर फूल फेंककर चले गए ? हे प्राणेश्वर, मैं कैसी पापिन हूँ, चांडालिन हूँ ! इस नश्वर शरीर के शृङ्गार में ही समय गँवा कर ऐसी अपनी हालत आप बना ली न ! युगों में कभी एक बार आने वाले ऐसे अमूल्य क्षण को खो दिया न ! परमात्मा को खोकर पछताने वालों की-सी हो गई मेरी हालत ! प्यारे प्रभु, न जाने ऐसा वह क्षण कब मिलेगा ? और कहाँ ढूँढूँ तुम्हें अन्तरात्मा !

५८

ओह ! सब जगह आनन्द, नित्य निर्मलानन्द की बहार है। हर जगह प्यार की चहल-पहल, आमोद-प्रमोद है। पर, मेरे लिए क्या है प्रभु ? स्वच्छ निर्मल सरोवर के किनारे खड़ा होकर भी प्यास से तड़पने वाला पापी हूँ मैं। उज्ज्वल प्रकाश के प्रांगण में खड़ा होकर भी गुफा के अन्धकार का अनुभव करने वाला अनजान आदमी हूँ मैं। हाय प्रभु, चारों ओर होने पर भी हाथ स्पर्श नहीं कर सकता ! नज़दीक होने पर भी उपयोग नहीं कर सकता ! हाथ का कौर मुँह में नहीं पड़ सकता। यह क्या प्रभु ? हाय, पास में बैठी पत्नी को प्यार से चूम भी नहीं सकता, ऐसी हुई मेरी हालत। इस तरह की विरह-व्यथा क्यों दी इस जीव को देव ? ऐसा क्यों प्रभु ? ऐसा क्यों ? हाय, अहम् की भावना की काली छाया सता रही है मुझे। काम के मोह ने घेर रखा है मुझे। इन दोनों को कुचलने पर ही सरस सम्मिलन का साम्राज्य स्थिर हो सकेगा इस हृदय में, स्वामी, अनन्त आनन्द-स्रोत में डूबेगा यह जीवन, अमृत पीकर सन्तुष्ट होगा यह जीवन। क्या मैं ऐसी आशा करूँ स्वामी ? इस तरह होने की आशा है ? कभी-न-कभी मेरी आस पूरी होगी और मुझे सुख-शान्ति मिलेगी अन्तरात्मा !

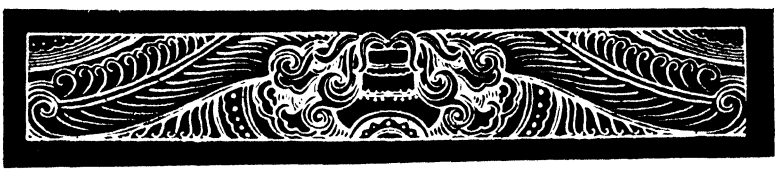

५९

वह कौन-सा निठुर दिन था जब तुमने अपने हृदय-मन्दिर से मुझे दुत्कार कर दूर कर दिया ? हाय, मैं उस दिन से आज तक भूमंडल में चंचल यात्री की तरह भटक रहा हूँ। प्रियतम के आलिंगन में रहने वाली सिन्दूर-धारिणी नवोढा की तरह सुवर्ण-धूलि से शरीर सजाकर तुम्हारे हृदय-गर्भ का मिष्टान्न खाते हुए सुख-कुसुम के अग्रभाग पर था मैं ! हाय, वह कौन-सी बुरी घड़ी थी ? न जाने उस दिन तुम इतने नाराज क्यों हो गए ? नहीं जानता कि मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है ? घर-बार गँवा कर, दारुण दुःख से दहता हुआ अनाथ की तरह, खोई हुई वस्तु का स्वप्न देखकर उसी की चिन्ता करता, इधर-उधर तनिक सुख की खोज करता हुआ मारा-मारा फिर रहा हूँ मैं ! हवा के झोंके में फँसे सूखे पत्ते की तरह, प्रवाह में पड़ी मछली की तरह, कर्म-जाल में फँसे गरीब जीव की तरह न जाने किस ओर जा रहा हूँ और न जाने कब पार पाऊँगा। दयानिधे, बछड़े को गाय के पास भेजने की, शिशु को माता की गोद देने की, प्रिया से प्रियतम का मिलन कराने की शक्ति तुम्हारे सिवा और किसमें है ? एक बार तुम मुझे अपनी ओर बुलाकर मेरा उद्धार करो न।

६०

आहा ! यही तो आनन्द है आनन्द, निरालम्ब आत्मानन्द, नित्यानन्द ! आनन्द ही आनन्द है ! कर्म-वृक्ष का कोमल मधुर फल है यह, साधन-कुसुम की सुवासित सुधा है यह, जीवन का सच्चा सार सर्वस्व है यह, नर जन्म सार्थक करने वाली अमृत-धारा है यह। निसर्ग-शिशु को शान्त सुलाने वाली निशा की तरह, वनस्पतियों को सोमरस पिलाने वाले चाँद की तरह, मनुष्यों को हृदय की आशाएं...सभी अरमान...मन भर पूर्ण करके नवजीवन शक्ति देने वाला है यह आनन्द। आहा, आधी रात की शान्ति में हृदय के भीतर खड़े होकर चाँदनी की सुधा सरसाने वाले मेरे आनन्द चन्द्र, कल्प-कल्पान्तों से तप करते हुए तुम्हारे दिव्य-दर्शन के लिए खड़ा था, तुम्हारे शुभ संदर्शन के लिए रुका था। कहना चाहिए की अब सफल हुआ मेरा थोड़ा सुकृत। मैं अपना धन्य भाव कैसे वर्णन कर सकूँगा ? यही स्थिति अखंड स्थिर रखना प्रभु ! इसी को मेरी जागृति की नींव बनाकर रखना। यही मेरे जीव तथा भावों का आधार हो। इसी को मेरी कर्म-प्रेरक-शक्ति बना कर मुझसे क्रीडा कराओ, नचाओ इस विश्व-लीला में अन्तरात्मा ! यही मेरी अन्तिम विनती है प्रभु अन्तरात्मा !